

**BRAHMAVART P.G. COLLEGE, MANDHANA
KANPUR NAGAR**

प्रश्नBANK

**FOR CSJM UNIVERSITY'S
ODD SEMESTER EXAMINATION**

M.A.I SEM (Hindi)

Paper-II^{end}

**साहित्यालोचन
(A010702T)**

**40+SHORT ANSWER QUESTIONS
Brief and Intensive Notes**

**Dr. Amit Kumar Dubey
Department of Hindi, Brahmavart P.G. College,
Kanpur
&
Priyanka Kamal
Research Scholar U.G.C. NET & J.R.F.**

एम.ए. प्रथम सेमेस्टर

वषय- हिन्दी

प्रथम प्रश्नपत्र

साहित्यालोचन

(A010702T)

प्रश्न -1 भारतेन्दुयुगीन आलोचना पद्धति पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - भारतेन्दु युग में जिस प्रकार गद्य की अन्य विधाओं का श्री गणेश हुआ उसी प्रकार हिन्दी समीक्षा का प्रारम्भ भी इसी काल में हुआ। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने हिन्दी समालोचना का द्वार खोल दिया। हिन्दी प्रदीप में अपेक्षाकृत गम्भीर आलोचनाएँ प्रकाशित होती थीं। भारतेन्दु जी ने जिस प्रकार अन्य गद्य विधाओं के विकास में योगदान दिया उसी प्रकार समालोचना के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होंने 'नाटक' नामक एक ग्रन्थ भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुकरण पर लिखा। यह सैद्धान्तिक आलोचना का एक प्रौढ़ ग्रन्थ है, जिसकी प्रशंसा करते हुए डॉ० गणपति चन्द्रगुप्त ने लिखा है "यह ग्रन्थ एक अत्यन्त प्रौढ़ रचना है जिसमें प्राचीन भारतीय नाट्यशास्त्र एवं आधुनिक पाश्चात्य समीक्षा साहित्य का समन्वय करते हुए तत्कालीन हिन्दी के नाटककारों के लिए सामान्य नियम निर्धारित किये गये हैं। इस ग्रन्थ की रचना सन् 1883 ई० में हुई। इस काल में आलोचना के तीन रूप मिलते हैं- (१) सैद्धान्तिक आलोचना, (२) टीका अथवा भाष्य, (३) इतिहास ग्रन्थों में लिखे हुए कवि परिचय। सैद्धान्तिक आलोचना में भारतेन्दु कृत 'नाटक के अतिरिक्त जगन्नाथ प्रसाद कृत छन्द प्रभाकर मुरारिदान कविराज कृत 'जसवन्त जसोभूषण और प्रताप नारायण सिंह कृत रुपा कुसुमाकर आदि ग्रन्थ भी सैद्धान्तिक आलोचना के ग्रन्थ हैं। टीका पद्धति के अन्तर्गत लिखे नगरे के आलोचना ग्रन्थों में बिहारी सतसई पर लल्लूलाल कृत 'लाल चन्द्रिका का संशोधित रूप ग्रियर्सन ने १८६६ ई० में प्रकाशित करवाया। कवियों के जीवन परिचय एवं उनके कृतत्व की समीक्षा उरु के काल में लिखे गये शिव सिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' एवं ग्रियर्सन के इतिहास ग्रन्थ में भी मिलती है। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली पुस्तक समीक्षा में तत्कालीन आलोचना का बीज विद्यमान है। भारतेन्दु काल के समालोचकों में बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र के नाम लिये जा सकते हैं। प्रेमघन जी ने लाला श्री निवासदास कृत 'संयोगिता स्वयंवर' की समीक्षा अपनी पत्रिका 'आनन्द कादम्बिनी' में की। बालकृष्ण भट्ट ने अपने पत्र हिन्दी प्रदीप में 'सच्ची आलोचना' शीर्षक से 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना की। इसी प्रकार उन्होंने भारतेन्दु के नाटक 'नील देवी' की

और श्रीनिवासदास के उपन्यास 'परीक्षा गुरु' की भी समीक्षा लिखी। भट्ट जी की आलोचना शैली में सरलता, भावात्मकता और व्यंग्यात्मकता का पुट विद्यमान है।

प्रश्न -2 द्विवेदी युगीन आलोचना पद्धति का वर्णन कीजिए।

उत्तर- द्विवेदी युग में आलोचना का रूप भारतेन्दु युग की तुलना में अधिक निखरा है, साथ ही इस काल में आलोचना की विभिन्न पद्धतियाँ भी विकसित हुईं। एक ओर तो संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकरण पर सैद्धान्तिक आलोचना के ग्रन्थ लिखे गये, यथा-लाला भगवानदीन कृत 'अलंकार मंजूषा', जगन्नाथ प्रसाद भानु कृत 'काव्य प्रभाकर' आदि तो दूसरी ओर तुलनात्मक आलोचना का सूत्रपात पद्म सिंह शर्मा ने 'बिहारी और 'सादी' की तुलना करके किया। इसी परम्परा में मिश्र बन्धुओं ने 'हिन्दी नवरत्न', लाला भगवानदीन ने 'बिहारी और देव' तथा कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' नामक पुस्तकें तुलनात्मक आलोचना की पद्धति पर लिखी। तुलनात्मक आलोचना का आधार परम्परागत शास्त्रीय विवेचना ही रही।

परिचयात्मक आलोचना के अन्तर्गत विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में पुस्तक समीक्षाओं का प्रकाशन उस काल में अधिक विकसित हुआ। सरस्वती में प्रकाशित अधिकांश परिचयात्मक आलोचनाएँ महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखी गईं। ऐसी आलोचनाओं में पुस्तक का संक्षिप्त परिचय, उसकी विषय-वस्तु की निन्दा या प्रशंसा तथा लेखकीय दृष्टिकोण का उद्घाटन किया जाता था। द्विवेदी जी के अनुसार, "समालोचक का कर्तव्य है कि वह इस बात पर विचार करें कि "किसी पुस्तक या प्रबन्ध में क्या लिखा गया है, किस ढंग से लिखा गया है, वह विषय उपयोगी है या नहीं, उससे किसी का मनोरंजन हो सकता है या नहीं, उससे किसी को भी लाभ पहुँच सकता है या नहीं, लेखक ने कोई नयी बात लिखी है या नहीं, यही विचारणीय विषय है।

द्विवेदी जी ने एक ओर भाषा संस्कार के द्वारा लोगों को शुद्ध हिन्दी लेखन की ओर अग्रसर किया तो दूसरी ओर कवियों और लेखकों को उनके कर्तव्य का बोध भी कराया। आलोचना क्षेत्र में उनका महत्व निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है। उन्होंने नवीन एवं प्राचीन का समन्वय किया तथा आगे के आलोचकों को दिशा निर्देश दिया। उनकी शैली सरल, व्यावहारिक एवं सरस है जिसमें व्यंग्यात्मक पुट भी देखा जा सकता है।

इस काल में पाश्चात्य समीक्षकों की आलोचनात्मक कृतियों का अनुवाद भी हिन्दी में किया गया। पोप के 'ऐस्से आन क्रिटिसिज्म' का हिन्दी अनुवाद बाबू जगन्नाथ रत्नाकर ने 'समालोचनादर्श' नाम से किया। इसी परम्परा में आगे चलकर शुक्ल जी ने 'ऐस्से आन इमेजिनेशन' का अनुवाद 'कल्पना का आनन्द' नाम से किया। द्विवेदी जी के कुछ निबन्धों में भी पाश्चात्य समालोचकों के विचारों की झलक विद्यमान है। पाश्चात्य समीक्षाशास्त्र से परिचित होने के बाद भारतीय (हिन्दी) आलोचना का स्वरूप बदल गया है। संस्कृति पद्धति से जहाँ केवल शास्त्रीय आलोचनी होती थी, वहीं अब आलोचना के लिए मानदंड निर्धारित किये गये

और कृति के सामान्य गुण-दोषों की विवेचना के अतिरिक्त कृति की मूल प्रवृत्तियों एवं शाश्वत तत्वों का विवेचन भी किया जाने लगा।

प्रश्न 3- आलोचना के क्षेत्र में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के योगदान की समीक्षा कीजिए।

उत्तर- हिन्दी आलोचना को विकसित करने में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का भी महत्वपूर्ण योगदान है। बाबू श्यामसुन्दरदास ने इस संस्था के माध्यम से हिन्दी के आलोचना साहित्य की पर्याप्त श्रीवृद्धि की है। उन्होंने 'हिन्दी भाषा और साहित्य' 'साहित्यालोचन', 'भाषा रहस्य', जैसी कृतियों की रचना करके हिन्दी का महान उपकार किया। साहित्यालोचन में भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र को समन्वित करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

प्रश्न 4- नन्द दुलारे वाजपेयी के आलोचना ग्रन्थों का वर्णन कीजिए।

उत्तर- हिन्दी समीक्षकों में शुक्ल जी के बाद जिस आलोचक का नाम बड़े आदर से लिया जाता है, ये हैं आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी। उन्होंने छायावादी काव्य की विस्तृत विवेचना करते हुए इस काव्यधारा को प्रतिष्ठित कराने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके द्वारा रचित कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं 'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य नये प्रश्न', 'कवि निराला', 'प्रकीर्णिका तथा राष्ट्रीय साहित्य' आदि। वे काव्य में सौन्दर्य विधायक तत्वों के उद्घाटन पर विशेष बल देते हैं। कथा साहित्य और नाटक की आलोचना वे इनके प्रभावकारी पक्ष को ध्यान में रखकर करते हैं। प्रसाद जी के नाटकों को वे स्वच्छन्दतावादी तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों को पुनरुत्थान मानते हैं। वे मूलतः छायावादी एवं स्वच्छन्दतावादी समीक्षक के रूप में हिन्दी समीक्षा में प्रतिष्ठित हुए हैं।

प्रश्न 5- हजारी प्रसाद द्विवेदी के आलोचना साहित्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी शुक्ल परम्परा के आलोचक हैं किन्तु शुक्ल जी की नई मान्यताओं से सहमत नहीं हैं। वे कबीर को एक उच्चकोटि का कवि और समाज सुधारक मानते हैं। कबीर की भाषा की शक्ति पर भी उन्होंने ही पहली बार विचार किया है। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'नाथ सम्प्रदाय', 'हिन्दी साहित्य', 'सूर साहित्य-', 'कबीर' आदि कृतियों उनके गम्भीर चिन्तन मौलिक विवेचन को उजागर करती हैं। उनका दृष्टिकोण मानवतावादी अधिक है। मध्यकालीन धर्म व साधना और तद्युगीन साहित्य का विश्लेषण करने में उन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई है।

प्रश्न 6- हिन्दी आलोचना पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

उत्तर - हिन्दी आलोचना का अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व है। कुछ लोग उसके स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। वे उसे संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा मानते हैं अथवा पाश्चात्य

आलोचना का अनुकरण कहते हैं। परन्तु, हिन्दी आलोचना संस्कृत काव्यशास्त्र और पश्चिमी समीक्षा से जुड़े रहने पर भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। उसका सैद्धांतिक पक्ष यदि उसे संस्कृत काव्यशास्त्र के निकट ले जाता है, तो व्यावहारिक पक्ष पश्चिम समीक्षा से जोड़ देता है।

हिन्दी आलोचना अपने बीज रूप में भक्तिकाल में मिलती है। रीतिकालीन काव्यशास्त्र में उसका और अधिक विकसित रूप दिखाई देता है। परन्तु यह संस्कृत काव्यशास्त्र का अन्धानुसरण मात्र है और इसमें समीक्षा का केवल सैद्धांतिक पक्ष उजागर हुआ है। यद्यपि डॉ. नगेन्द्र ने यह कहकर कि इसमें संस्कृत की भाँति 'ध्वनि' पर जोर देकर 'रस' पर जोर दिया गया है, इसको संस्कृत काव्यशास्त्र से पृथक् करने की चेष्टा की गयी है। परन्तु, यह अन्तर कोई विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। इस प्रकार हिन्दी आलोचना संस्कृत-काव्यशास्त्र से जुड़ी हुई है, परन्तु यह बात केवल भक्तिकाल और रीतिकाल के काव्यशास्त्रीय विवेचना के लिए कही जा सकती है। वर्तमान काल में हिन्दी समीक्षा का जो स्वरूप विकसित हुआ है वह युगीन जीवन-मूल्यों की उपज है। इस आधार पर पश्चिम की व्यावहारिक समीक्षा प्रणाली को अपनाते हुए भी हिन्दी आलोचना ने उसे भारतीय रसवादी दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में व्यवहृत किया है। अतः संस्कृत और पश्चिम के काव्यशास्त्र के प्रभावों को झेलते हुए भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। यद्यपि हिन्दी आलोचना का स्वतन्त्र स्वरूप आधुनिक युग के भारतेन्दु काल में ही प्रकट होता है, परन्तु परम्परा से जुड़े रहने के कारण हम उसे हिन्दी के भक्तिकाल और रीतिकाल के काव्यशास्त्र में देख सकते हैं।

भक्तिकाल - भक्तिकाल का हिन्दी काव्यशास्त्र जिन रचनाओं में मिलता है- सूरदास की 'साहित्य लहरी', नन्दनदास की 'रसमंजरी' व 'विरह मंजरी', ध्रुवदास की 'रस हीरावली', कृपाराम की 'हिततरंगिणी', बलभद्र मिश्र का 'नख-शिख', तथा रहीम का 'बरवैनायिका भेद'।

इन भक्तियुगीन ग्रन्थों का मूल प्रेरणा सिद्धांत विवेचन की लालसा न होकर प्रतिपाद्य का चित्रण मात्र है। इन कवियों का लक्ष्य नायिका-भेद को समझना न होकर अपने इष्टदेव की लालाओं का गान है। इन ग्रन्थों का आधार संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ नहीं हैं।

रीतिकाल - हिन्दी काव्यशास्त्र की अविच्छिन्न धारा रीतिकाल में मिलती है। केशवदास से इसका सूत्रपात हुआ और पद्माकार तक यह चलती रही।

प्रमुख कवि एवं उनके ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं -

कवि	ग्रन्थ
(1) केशवदास	कविप्रिया, रसिकप्रिया।
(2) चिन्तामणी	कविकुलकल्पतरु ।
(3) कुलपति	रस-रहस्य।

(4) देव	भाव-विलास, काव्य-रसायन।
(5) श्रीपति	काव्य-सरोज
(6) सोमनाथ	रस पीयूषनिधि।
(7) भिखारीदास	रस-सारांश, काव्य-निर्णय।
(8) प्रतापसाहि	काव्य-विलास।
(9) पदमाकर	जगद्विनीत ।

इन रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का कोई विशेष महत्व नहीं है। इनमें मौलिकता का अभाव है। संस्कृत काव्यशास्त्र का ब्रजभाषा पद्य में अनुवाद कर देना ही इनका लक्ष्य रहा है। फिर इनमें विवेचन की प्रौढ़ता गम्भीरता भी नहीं है। गद्य का प्रयोग न होने के कारण यह समीक्षा का सच्चा-स्वरूप प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं। इन ग्रन्थों का महत्व केवल इस दृष्टि से है कि इन्होंने संस्कृत न जानने वाले जन-समूहों को काव्यशास्त्र के सामान्य नियमों से परिचित कराया और संस्कृत की परम्परा को जीवित बनाये रखा।

प्रश्न 7- स्वच्छंदतावाद से क्या तात्पर्य है? उसका उदय किन परिस्थितियों में हुआ?

उत्तर - स्वच्छंदतावाद एक ऐसा साहित्यिक आन्दोलन है जो आभिजात्यवाद की प्रतिक्रिया में आया। इसमें शास्त्रीय नियमों को दरकिनार करके रचना-विधान तथा रचनाकार की स्वतंत्रता को मान्यता दी गयी। अंग्रेजी में रोमांटिसिज्म शब्द 'रोमांस' से बना है, जिसका अर्थ है - प्रेम के स्वच्छंद क्रिया-कलाप, प्रेम और स्वच्छंदता दोनों ही मानव जीवन के सहज तत्त्व हैं, अतः जीवन में स्वच्छंद प्रेमचर्या भी स्वाभाविक है। इसी के परिणामस्वरूप स्वच्छंदत प्रेमचर्या, जिसमें सामाजिक मर्यादाओं और दायित्वों का उल्लंघन दृष्टव्य हो, कला और साहित्य के क्षेत्र में भी आ गई। हालाँकि रोमांटिसिज्म (स्वच्छंदतावाद) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सन् 1792 में जर्मन आलोचक श्लेजर ने किया और उसे क्लासिसिज्म (आभिजात्यवाद) का विरोधी सिद्धान्त माना, लेकिन इस वाद की शक्तिशाली नीति से स्थापना की वर्ड्सवर्थ ने सन् 1800 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका स्वच्छंदतावाद का घोषणा-पत्र मानी जाती है। 1770 तक नव्य आभिजात्यवाद का बोलबाला रहा है, लेकिन इस वाद ने रचना-विधान के अत्यधिक एवं अनावश्यक विधान बनाये जिसके कारण रचना धार्मिकता में सहजता की जगह कृत्रिमता प्रधान होने लगी।

नव्यशास्त्रवाद की अत्यधिक एवं अनावश्यक नियमबद्धता तथा कृत्रिमता के विरुद्ध विद्रोह पनपने लगा। साहित्य धीरे-धीरे नियम, आदर्श, उद्देश्य-प्रधानता के चंगुल से छुटकारा पाने के लिए मचलने लगा। वह आंतरिक प्रेरणा की दिशा में बढ़ने के लिए लालायित हो उठा। दूसरी ओर फ्रांस की राज्य क्रान्ति का असर भी गहराने लगा। इस क्रान्ति ने यूरोप की प्राचीन

संस्कृति को पूर्णतः बदल डाला। जीवन मूल्यों में भी परिवर्तन आ गया, जिसका प्रभाव साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक था, क्योंकि एक नवीन जीवन दृष्टि का उन्मेष हो चुका था।

सन् 1789 में होने वाले फ्रांस की राज्य क्रान्ति भी प्राचीनता एवं शास्त्रीयता के विरुद्ध भड़कने वाली आग को हवा दिया। प्राचीन धर्म राज व्यवस्था, परम्परागत सामाजिक मान्यताओं एवं जड़ संस्कारों के खिलाफ एक नवीन चेतना अगड़ाई लेने लगी और इस प्रकार स्वच्छंदतावाद का जन्म हुआ।

इस प्रकार स्वच्छंदतावाद परम्परा के प्रति विद्रोह की भावना से जन्मी विचारधारा है। रूसो इस नवीन (रोमांटिक) विचारधारा का प्रतिनिधि था। उसने कहा कि मनुष्य पैदा तो स्वतंत्र हुआ है, किन्तु हर जगह बंदी बना लिया गया है इसी ने स्वातंत्र्य की लालसा, बंधनों को काट फेंकने का उत्साह और प्रकृति की ओर लौटने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया और अंततः यही दोनों तत्व स्वच्छंदतावाद के मूलाधार बन गये। आभिजात्यवाद व नव्य आभिजात्यवाद के चंगुल से निकाल कर, साहित्य को मुक्त कराने का कार्य स्वच्छंदतावाद ने ही किया। इस परिवर्तन पर टिप्पणी करते हुए शिपले ने लिखा है -

"बहुत दिनों से श्रृंखला में आबद्ध जीवन उन्हें तोड़ फेंकने के लिए उठ खड़ा हुआ। तर्क, परम्परा, नियम इन सबको उसने बंधन माना, उन्हें प्रकृति के सत्य और सौन्दर्य से दूर की वस्तु कहा और उनसे मुक्त हुआ। साहित्य का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।"

यद्यपि स्वच्छंदतावाद मूल प्रेरक रूसो था, लेकिन यह वाद सही आयाम वर्ड्सवर्थ की 'रचना 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका के प्रकाशन के बाद ग्रहण किया। शैली, कीट्स एवं कॉलरिज जैसे कवियों ने इसे पूर्णतः विकसित किया। काव्य में कल्पना एवं आनन्द का मूल्य प्रमुख हो गया, रूढ़ियों की अवहेलना होने लगी। शास्त्रीय नियमावली की उपेक्षा हुई और काव्य की आत्मा स्वतंत्र होकर अभिव्यक्त होने लगा। छंद, अलंकार आदि बाह्यालंकरण के स्थान पर नैसर्गिक भावोन्मेष को प्राथमिकता मिलने लगी।

प्रश्न 8- स्वच्छंदतावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख भर कीजिए।

उत्तर - स्वच्छंदतावाद की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ हैं -

- (1) परम्परा के प्रति विद्रोह।
- (2) आडंबर एवं कृत्रिमता से मुक्ति
- (3) कल्पना पर बल
- (4) प्रकृति के प्रति प्रेम
- (5) व्यक्तिवादी दृष्टिकोण
- (6) सौन्दर्यानुभूति
- (7) यथार्थ जगत् से पलायन
- (8) स्वः दुखानुभूति की भावना का वर्णन
- (9) लोक कल्याण की भावना।

(10) नवीन अभिव्यंजना शिल्प ।

प्रश्न 9- मनोविश्लेषवाद की समीक्षा दीजिए।

उत्तर - मनोविश्लेषणवादी समीक्षा सिद्धान्त के मूल में प्रसिद्ध मनोविज्ञान वक्ता फ्रायड, एडलर और युंग की विचारधारा कार्य करती है। समीक्षाशास्त्र में मनोविश्लेषण सिद्धान्त का क्या योगदान है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। वास्तव में कलाकार की कृतियों का अनुशीलन करते समय कलाकार के जीवन, व्यक्तित्व, प्रभाव एवं अनुभवों का सम्पूर्ण ज्ञान आवश्यक होता है। रचना प्रक्रिया एक मानसिक व्यापार है। अतः कवि या लेखक के मनोगत भावों का अध्ययन करने से समीक्षक को सही निष्कर्ष पर पहुँचने में सहायता मिलती है। बहिर्मुखी लेखक की रचनाएँ अन्तर्मुखी लेखक की रचनाओं से भिन्न कोटि की होगी। कोई भी व्यक्ति चार प्रकार का कार्य कर सकता है (1) संवेदन ग्रहण, (2) विचार ग्रहण, (3) भाव ग्रहण (4) सहज ज्ञान ग्रहण। उक्त ज्ञान राशि का साहित्य समीक्षा में दो प्रकार से उपयोग किया जा सकता है- (1) कवि जीवन की समीक्षा के लिए (2) साहित्य-समीक्षा अथवा कलाकृतियों की समीक्षा के लिए। इस प्रकार मनोविश्लेषण-सिद्धान्त कवि एवं उसकी कृतियों दोनों की समीक्षा में सहयोग देता है।

प्रश्न 10- मनोविश्लेषणवाद पर एक संक्षिप्त टिप्पणी प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर - 'मनोविश्लेषणवाद' मानव मन का विश्लेषण करने की एक मनोवैज्ञानिक पद्धति है, जिसका जनक सिगमण्ड फ्रायड को माना जाता है। इसके साथ ही अल्फ्रेड एडलर तथा कार्ल गुस्ताव युंग का नाम भी उल्लेखनीय है। यह मानसिक एवं स्नायविक रोगियों के उपचार की एक विशिष्ट पद्धति के रूप में विकसित हुआ। ऐसा माना जाता है कि इस पद्धति से अन्तर्मन की उन बातों को जाना जा सकता है जिन्हें वह बोध के समय बताने में असमर्थ रहता है। यह भी माना गया है कि सम्मोहन के क्षणों में मानसिक रोगी के चेतन मन के माध्यम से अचेतन मन में भी झाँका जा सकता है। साहित्य और मनोविज्ञान का सम्बन्ध अनिवार्य रूप से रहा है।

नयी-नयी मनोवैज्ञानिक खोजों एवं उनके आधार पर बने सिद्धान्तों ने साहित्य को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। जिन पात्र व घटनाओं को साहित्य में उठाया जाता है, उनके समस्त व्यवहार आदि में मनोविज्ञान ही झलकता दिखाई देता है। भले ही कलाकार मनोविज्ञान का ज्ञाता न हो, तथापि मानव मन की विभिन्न स्थितियों की नवीन- नवीन दशाएँ उसके चित्रण से उभर ही आती हैं। यह स्थिति समस्त सर्वजनात्मक कला में रहती है। साहित्य पर मनोविज्ञान के इस व्यापक प्रभाव का अध्ययन मनोवैज्ञानिक कला साहित्य चिन्तन के नाम से जाना जाता है। मनोविश्लेषण द्वारा पात्रों की स्थितियों और कार्यों के जटिल सम्बन्धों को प्रकाशित किया जा सकता है। साहित्यिक कृतियों में जहाँ-जहाँ कवि या साहित्यकार का

आत्मतत्त्व अभिव्यक्त होता है वहाँ-वहाँ मनोविश्लेषण का सिद्धान्त सत्य तथ्य को निरूपित कर सकता है।

प्रश्न 11- मार्क्सवाद की दृष्टिकोण मानवतावादी है इस कथन के आलोक में मार्क्सवाद पर विचार कीजिए?

उत्तर - मार्क्सवाद का जन्म ही मानवीय चिन्ताओं को लेकर हुआ था। वह समाज के उन लोगों को जो दबे कुचले एवं पीड़ित थे, सामाजिक संरचना के केन्द्र में स्थापित करना चाहता था। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ने अपनी शोषण की जाल को सर्वत्र फैला रखा था। समाज दो वर्गों में विभक्त हो गया था बुर्जुआ एवं सर्वहारा। बुर्जुआ वह वर्ग था जिसकी मुट्ठी में उत्पादन के समस्त संसाधन कैद थे। पूँजी पर इसका एकाधिकार था। सर्वहारा वर्ग में गरीब किसान, मजदूर, शिल्पकार, दस्तकार आते थे जोकि अपनी जिन्दगी बुर्जुआ लोगों की शर्त पर जीते थे। बुर्जुआ वर्ग जैसा चाहता था इनका शोषण करता था।

मार्क्सवाद साहित्य को मानव हितकारी मानता है साहित्य के प्रति मार्क्सवादी दृष्टि 'लोकमंगलवादी' है। साहित्य और कला जीवन के लिए ही हैं और मार्क्सवाद 'लोकमंगल' को आर्थिक सन्तुलन में ही आंकता है, अतः साहित्य और कला को भी आर्थिक सन्तुलन लाने में सहायक होना अपेक्षित है। मार्क्सवाद यह मानता है कि जो शक्तियाँ (पूँजीवादी व सामन्तवादी) सामाजिक शक्तियों का नियमन करती हैं, वे ही राजनीतिक शक्तियों पर भी नियंत्रण रखती हैं। मार्क्स इन सब शक्तियों (राज्य, पूँजीवाद व सामन्तवाद) के साथ धर्म को भी शोषक मानता है। धर्म तो एक प्रकार की अफीम है। जो व्यक्ति की स्वच्छन्द चेतना को कुंठित कर देती है। कलाकार एक सामाजिक प्राणी है, अतः सामाजिक स्थितियाँ (आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक) उसे प्रभावित करती हैं और साहित्य में उसी प्रभाव की झलक होती है पर वहाँ यह भी माना जाता है कि साहित्य सामाजिक स्थितियों का यथार्थ चित्र होते हुए भी इतनी शक्ति रखता है कि वह सामाजिक व्यवस्था को बदले सके, सामाजिक उत्थान हेतु क्रान्ति ला सके। पूँजीपति साहित्य की इन शक्तियों को जानता है, अतः वह साहित्य का इस प्रकार से संचालन करता है कि शोषण और प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियाँ पोषित हो सकें। इसके विपरीत क्रान्तिकारी वर्ग, साहित्य का उपयोग क्रान्ति की अवधारणा के लिए करते हैं और उसे प्रगति का साधन बना देते हैं।

प्रश्न12- हिन्दी आलोचना के विकासक्रम में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के योगदान की समीक्षा कीजिए।

अथवा

हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का योगदान बताइये।

अथवा

आलोचना सम्राट आचार्य शुक्ल की आलोचना शैली पर प्रकाश डालिए।

उत्तर -आलोचना सम्राट आचार्य रामचंद्र शुक्ल का हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में अद्वितीय स्थान है। इनसे पूर्व तुलनात्मक प्रणाली चल रही थी जिसके सामने न तो कोई आदर्श था और न कोई सिद्धान्त। केवल वैयक्तिक पूर्वाग्रहों के कारण अभी तक आलोचना के ऐसे स्वस्थ प्रतिमान भी सुनिश्चित नहीं हो पाये थे जो कि गद्य के विविध अंगों के लिए उपयोगी हों। आचार्य शुक्ल के नवीन मानदण्डों तथा सुविकसित समीक्षा पद्धति को निर्मित किया। उन्होंने हिन्दी आलोचना क्षेत्र को नवीन दिशाएँ प्रदान कीं। साथ ही किसी कवि या उसकी रचना को तत्कालीन सामाजिक आलोक में रखकर उसकी समीक्षा की। सैद्धान्तिक आलोचना क्षेत्र में उन्होंने अपनी मौलिक उद्भावनाओं द्वारा इस क्षेत्र के सभी अंगों का गम्भीर एवं सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया।

ऐतिहासिक आलोचना के रूप में कवि या उसकी कृति की समीक्षा करते हुए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। आचार्य शुक्ल रसवादी हैं और साथ-साथ सौन्दर्यवादी भी, किन्तु लोक-संग्रहात्मक की भावना उनकी आलोचना का अभिन्न अंग बनी रही है। उनके लिए समाज निरपेक्ष कोरी वैयक्तिक अनुभूति का कोई मूल्य नहीं है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वे 'कला कला के लिए और कला जीवन के लिए सिद्धान्तों के समन्वय के पक्षपाती हैं। आचार्य शुक्ल द्वारा रचित आलोचनात्मक ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'गोस्वामी तुलसीदास', 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिका तथा 'चिन्तामणि' प्रथम व द्वितीय भाग आदि उल्लेखनीय हैं। 'गोस्वामी तुलसीदास' उनके आदर्श कवि हैं और कदाचित्त उनके आलोचना के मानदण्ड बहुत कुछ तुलसी के रामचरितमानस पर आधारित है। उन्होंने तुलसी एवं उनके काव्य का अत्यन्त मौलिक रूप से विवेचन किया है और तुलसी को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध करने के लिए उनके समक्ष हिन्दी के किसी भी कवि को महत्व नहीं दिया। अस्तु शुक्ल जी की शैली में प्रौढ़ता, गम्भीरता, सूक्ष्मता, सरसता, प्रवाह और अपूर्व बल है जिसके कारण वे अपनी बात मनवाने के लिए पाठक को बाध्य कर देते हैं।

हिन्दी के आज के कई आलोचकों ने शुक्ल जी की आलोचना की कतिपय न्यूनताएँ प्रदर्शित की हैं। शुक्ल अपने नीतिवादी दृष्टिकोण के कारण सूर के प्रति और अपनी वर्ण-व्यवस्था तथा अवतारवाद में आस्था के कारण कबीर आदि निर्गुण कवियों के प्रति न्याय नहीं कर सके हैं। उन्होंने प्रगति काव्य की अपेक्षा प्रबन्ध काव्य को अत्यधिक प्रश्रय दिया है, वे नवीन काव्यधारा छायावाद की अन्तरात्मा को नहीं समझ सके तथा उनके रस को विभिन्न

कोटियों में विभक्त करना भारतीय परम्परा के सर्वथा विपरीत है, आदि-आदि। कुछ भी हो, इन परिसीमाओं के रहते हुए भी शुक्ल जी ने हिन्दी आलोचना को जो आदर्श दिया उसका मूल्य स्थायी है। शुक्ल जी जैसा सशक्त व्यक्तित्व वाला आलोचक शायद ही आज हिन्दी के पास कोई हो।

शुक्ल द्वारा प्रवर्तित समीक्षा पद्धति को लेकर चलने वाले हिन्दी के प्रमुख उल्लेखनीय आलोचक हैं पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कृष्णशंकर शुक्ल, रामकृष्ण शुक्ल, शिलीमुख, चन्द्रबली पांडेय और रमाशंकर शुक्ल रसाल। इनमें से अधिकांश ने शुक्ल जी के नीतिवादी और व्यावहारिक पक्ष को थोड़ा बहुत त्याग दिया है।

शुक्ल जी की सैद्धान्तिक आलोचना पद्धति पर भी इस युग में अच्छा कार्य हुआ है। गुलाबराय और केशव प्रसाद मिश्र के नाम इस दिशा में उल्लेखनीय हैं। शुक्ल जी द्वारा छायावादी काव्य के सम्यक् मूल्यांकन के अभाव की प्रतिक्रिया में छायावादी कवियों-प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी ने अपनी पुस्तकों की भूमिकाओं में छायावाद की कविता की अन्तर्दृष्टि और उसके सौन्दर्य पक्ष का सम्यक् विश्लेषण किया जिसका नन्द दुलारे वाजपेयी, शान्तिप्रिय द्विवेदी तथा डॉ. नगेन्द्र पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। परिणामतः वे छायावादी काव्य के यथार्थ स्वरूप को उपन्यस्त करने में समर्थ हुए।

प्रश्न 13- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना पद्धति का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के आलोचना के क्षेत्र में योगदान पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इस युग के प्रमुख आलोचक हैं। शुक्ल जी की भाँति इन्होंने भी आधुनिक आलोचना साहित्य को अपनी कृतियों एवं प्रेरणा से बहुत प्रभावित किया है। अपनी पैनी दृष्टि, मौलिक सूझ, वैज्ञानिक विवेचन, प्रभावकारी शैली से युक्त होकर पाठकों तक अपनी अमिट छाप छोड़ जाती हैं। कबीर, हिन्दी साहित्य की भूमिका, मध्यकालीन धर्म साधना आदि आपकी आलोचना की उत्कृष्ट पुस्तकें हैं। इनसे हम स्पष्ट देखते हैं कि विद्वान, आलोचक द्विवेदी जी का महान व्यक्तित्व युग की आलोचना को रूप देने का प्रयत्न कर रहा है।

कवि अथवा पुस्तक के विवेचन में द्विवेदी जी ने साहित्य तथा समाज के घनिष्ठ सम्बन्ध को दृष्टिपथ में रखा है। कबीर के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का उन्होंने सुन्दर विश्लेषण किया है और कबीर की विविध रूपी परिस्थितियों का विवेचन करके उनके व्यक्तित्व की भावनाओं को स्पष्ट किया है। कबीर का इतना क्रान्तिकारी व्यक्तित्व क्यों है क्योंकि द्विवेदी जी के शब्दों में "कबीर परस्पर विरोधी कोटियों के मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर भक्ति मार्ग, जहाँ प्रशस्त चौराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरोधी दिशाओं में गये हुए मार्गों के गुण-

दोष उन्हें दिखाई दे जाते थे।' इन्हीं भगवद्दत्त परिस्थितियों के कारण कबीर युग प्रवर्तन कर सकते थे। इस प्रकार अपनी 'मध्यकालीन धर्म साधना' में आचार्य द्विवेदी जी ने मध्यकालीन धर्म साधना और साहित्य का निरूपण करने से अपूर्व कुशलता दिखाई है। उनके 'हिन्दी कविता' नामक समीक्षात्मक लेख में भी इस प्रवृत्ति का परिचय मिलता है।

डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल जी के शब्दों में, “आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी” हिन्दी के मूर्द्धन्य आलोचकों में से हैं। अपनी नितान्त मौलिक समीक्षा-दृष्टि, प्रगाढ़ जीवनावस्था, विशद मानव सहानुभूति व स्वच्छन्द प्रतिपाद शैली के कारण वे शुक्लोत्तर युग हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में अन्तही महिमा से समन्वित होकर प्रतिष्ठित हैं। उनकी समीक्षा दृष्टि आचार्य शुक्ल की, लोकमंगल की दृष्टि का प्रायः विशद व्याख्यान कही जा सकती है। जीवन-तत्त्व की गवेषणा का व्याख्यान में द्विवेदी जी की गहरी रुचि व प्रीति है। इस तत्त्व-बोध में उनके भीतर का जिज्ञासु रूप पूरा-पूरा खिला है। जीवन-तत्त्व की उनकी उक्त जिज्ञासा कोरी 'ऐकेडेमिक' नहीं है। वह मानव-समाज व संस्कृति को और उनके पारस्परिक अन्तःसूत्रों को समझने में सहायक हुई है। मानव को समझने का उनका प्रयास इतना हार्दिक है कि उसकी चरम परिणति में द्विवेदी जी साहित्य में मानवतावादी मूल्यों के एक शीर्षस्थ उन्नायक के रूप में अतुलनीय समझे जाते हैं। उनके सामने संस्कृति का एक अत्यन्त ही व्यापक रूप है। स्वयं साहित्य भी, जिसे हम प्रायः आत्म-पर्यवसित वस्तु मान बैठते हैं, उनकी दृष्टि में संस्कृति का ही एक रूप अभिव्यक्ति या शैली है। इसीलिए वे साहित्यिक असाहित्यिक की ज्यादा छंटनी करने के पक्ष में नहीं दिखाई पड़ते। जो कुछ भी सांस्कृतिक व मानवीय महत्व में गर्भित है, वह सब कुछ उच्चकोटि की हार्दिकता से प्रेरित शैली में विन्यस्त होने पर कलात्मक साहित्य ही है। द्विवेदी जी की मूल दृष्टि मानवतावादी ही है। वर्ग-भेद को प्रश्रय देने वाली समाजशास्त्रीय दृष्टि से उनकी मानवीय सांस्कृतिक समाजशास्त्रीय दृष्टि सहज ही पृथक करके देखी जा सकती है। द्विवेदी जी के समीक्षा निष्कर्ष के निर्माण में जीवन-तत्त्व, मानवता संस्कृति व समाज-विषयक चिन्तन का पूरा-पूरा समावेश है। उच्च साहित्यिक गुणों के अतिरिक्त व्यापक मानव-संवेदना, जीवनावस्था, उच्च मूल्यों के प्रति गहरी निष्ठा, जीवन-स्वीकृति, दृढ़ता- स्पष्टता, उत्कृष्ट आशा, सहज औदार्य आदि व्यक्तिगत गुणों के रस में पगी उनकी उक्त व्याख्या अत्यन्त महिमाशालिनी बन गयी है।”

प्रश्न 14- नयी आलोचना या नई समीक्षा विषय पर प्रकाश डालिए।

अथवा

"स्वतन्त्रता पश्चात् आलोचना में एक नयी दिशा आयी" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

'नई आलोचना' या 'नई समीक्षा' के स्वरूप का विवेचन कीजिए।

उत्तर - नई आलोचना (नई समीक्षा)

साहित्य की अन्य विधाओं में नयेपन के समान आलोचना के क्षेत्र में भी छठे दशक की कम समाप्ति के समय नयेपन ने प्रवेश किया जिसे नयी आलोचना की संज्ञा दी गयी। इसी नयी आलोचना या समीक्षा पर अमेरिकी विद्वान जान को रेन्शम की पुस्तक 'द न्यू क्रिटिसिज्म' तथा शिकागो स्कूल के आलोचकों को प्रभाव स्पष्ट है। नया समीक्षक समीक्षा को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर भक्तिकम के परिवेश, वातावरण आदि को महत्व न देकर रचनाकार द्वारा प्रयुक्त भाषा की स्थिति में विसंगति, विडम्बना, तनाव, तनाव की व्यापकत्व और घनत्व को गणितीय पद्धति पर महत्व देता है। उसका ध्यान कृति की भाषिक संरचना पर केन्द्रित रहता है। वह किसी पूर्व निर्धारित आलोचना के मानदण्ड को अमान्य समझकर आलोच्य वस्तु को ही उसका प्रतिमान मानता है। उसके लिए रसवादी एवं मनोविश्लेषणवादी आदि समीक्षा पद्धतियाँ सर्वथा अस्वीकार्य और अनुपयोगी हैं। नया आलोचक रचना की आन्तरिक संगति पर ध्यान देकर उसके अंग की अन्य अंगों के साथ आपेक्षिक अनुबद्धता को परखता है। कुछ नये आलोचक तो अंगांगि-आलोचना में ही नयी आलोचना की इति कर्तव्यता समझते हैं और कुछ नये समीक्षक इससे आगे बढ़कर उसका मूल्यांकन अर्थात् जीवन के साथ उसकी प्रासांगिकता की भी तलाश करते हैं। नयी आलोचना के क्षेत्र में डॉ. देवीशंकर अवस्थी, नेमिचन्द्र जैन, डॉ. नामवर, डॉ. शिव प्रसाद सिंह, डॉ. रघुवंश, डॉ. देवराज, डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. रमेश कुन्तर मेघ, डॉ. शंभूनाथ सिंह, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के नाम उल्लेखनीय हैं। कुछ नये कवियों में भी आलोचकोचित गहरी व प्रखर समीक्षा शक्ति दृष्टिगोचर होती है। उनमें मुख्य मुख्य हैं- अज्ञेय, गजानन, धर्मवीर भारती, नलिन विलोचन शर्मा, लक्ष्मीकांत वर्मा तथा जगदीश गुप्त आदि।

निःसन्देह किसी रचना की समीक्षा में उसकी संरचना प्रक्रिया के विश्लेषण का अपना महत्व है और इसी प्रकार कृतिकार के अन्तस् के अभिव्यक्ति साधना भाषिक सर्जना का विश्लेषण व मूल्यांकन भी उपादेय है किन्तु आलोचना की परिधि की इतिश्री केवल इतने तक ही नहीं होती। उसे प्रेरणा, मार्गदर्शन और नवीन सृजन की नयी दिशाओं के पथ को भी प्रशस्त करना होता है।

आलोचना को वैज्ञानिक आधार देना बुरा नहीं है किन्तु वैज्ञानिकता या आधुनिकता के नाम पर आधुनिक अमरीकी या पाश्चात्य समीक्षा की कोरी नकल करना अवांछनीय है, जो बात हम पीछे "हिन्दी साहित्य : आधुनिकता का बोध" में साहित्यकार के दायित्व के विषय में कह चुके

हैं वह आज के नये समीक्षक पर भी उतनी चरितार्थ होती है कोई भी नवीन पद्धति अपनी पूर्व की स्वस्थ मूल्यवान परंपराओं से सर्वथा सम्बन्ध विच्छेद कर अपनी अर्थवत्ता को सिद्ध नहीं कर सकती। नयी आलोचना में समन्वयात्मकता अनिवार्य है। पिछली परम्पराओं के साथ अपेक्षित तालमेल में उसकी सार्थकता निहित है। केवल भाषिक संरचना की परख महत्वपूर्ण नहीं है, सृजन की आन्तरिक विवशता भी भाषा की रचनात्मकता व साहित्यिकता का स्तर हो सकती है।

पुस्तक समीक्षा का भी समीक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान है। 'प्रतीक', 'आलोचना' - 'वार्षिकी', 'मध्यम' आदि पत्रिकाओं में समय-समय पर पुस्तकीय समीक्षाएँ प्रकाशित होती रही हैं।

प्रश्न 15- आलोचना को परिभाषित करते हुए उसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर - आलोचना, समीक्षा, समालोचना आदि पर्यायवाची शब्द हैं। इन सबके द्वारा एक ही अर्थ का बोध होता है। अंग्रेजी का क्रिटिसिज्म शब्द आलोचना का समानार्थी है। आलोचना शब्द लुच् धातु से बना है। इसका अर्थ देखना है। इसीलिए आलोचना या समालोचना का अर्थ भली प्रकार 'देखना' माना गया है। समीक्षा का भी यही अर्थ है। आलोचना को भली प्रकार से देखना ही आलोचना है। आलोचना का कार्य आलोचना को भली प्रकार से देखकर उसके सम्बन्ध में अपना मत प्रस्तुत करना है। आलोच्य कृति के सम्बन्ध में निष्पक्ष भाव से निर्णय देने वाले व्यक्ति को आलोचक या समीक्षक कहते हैं।

साहित्य जीवन की व्याख्या करता है और आलोचना से साहित्य की व्याख्या होती है। आलोचक साहित्यिक रचना को स्वयं समझकर उसका बोध पाठकों को कराता है। इसीलिए उसे अध्यापक या दुभाषिण की संज्ञा दी जाती है। एक अध्यापक की भांति वह कृतिकर की भावना को पाठकों के समक्ष उपस्थित करता है। यह कार्य वह आलोचना द्वारा ही करता है। इसीलिए यह कहा जाता है कि आलोचना से आलोच्य कृति को समझने में सहायता मिलती है।

पूर्वकाल में आलोचक टीका और व्याख्या लिखकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता था, किन्तु आज समीक्षक का कर्तव्य बढ़ गया है। वर्तमान समय में ऐतिहासिक, सामाजिक प्रभावों के बीच कृति और कृतिकार को रखकर उसके संबंध में विचार करना अभीष्ट हो गया है। आज आलोचना के द्वारा दो प्रकार के कार्य मुख्यतः हो रहे हैं -

(1) साहित्य की कसौटी के रूप में सिद्धान्त कथन।

(2) साहित्य के गुण-दोषों का परीक्षण।

आलोचना के प्रकार कृति और कृतिकार की समीक्षा से सम्बन्धित विविध पद्धतियों को स्वीकार कर समीक्षक आलोच्य की समीक्षा करता है। इस आधार पर समीक्षा या आलोचना के निम्नलिखित रूप प्रचलित हैं -

(1) सैद्धान्तिक समीक्षा।

(2) निर्णयात्मक समीक्षा।

(3) प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा।

(4) व्याख्यात्मक समीक्षा।

व्याख्यात्मक समीक्षा के निम्नलिखित तीन स्वरूप मान्य हैं -

(अ) ऐतिहासिक समीक्षा

(ब) तुलनात्मक समीक्षा

(स) पन्दोन्मुखी समीक्षा

पन्दोन्मुखी समीक्षा को दो रूपों में विभाजित किया गया है -

(क) प्रगतिवादी समीक्षा और

(ख) मनोविश्लेषणवादी समीक्षा।

आलोचना के विभिन्न प्रकारों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है

(1) सैद्धान्तिक समीक्षा- सैद्धान्तिक समीक्षा में साहित्य के सिद्धान्तों का विवेचन होता है। काव्यांगों जैसे - रस, छन्द, अलंकार आदि का विवेचन सैद्धान्तिक आलोचना का विषय है।

(2) निर्णयात्मक समीक्षा- सैद्धान्तिक समीक्षा द्वारा जिन शास्त्रीय सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा होती है, उनके आधार पर आलोच्य के गुण-दोष का विवेचन निर्णयात्मक आलोचना का विषय माना गया है। निश्चित नियमों और सिद्धान्तों की कसौटी पर कृति का परीक्षण होने से निर्णयात्मक समीक्षा में निश्चयात्मक का गुण दिखाई पड़ता है, किन्तु ऐसी आलोचना में प्रगतिशीलता का सर्वथा अभाव रहता है।

(3) प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा- इस प्रकार की आलोचना में शास्त्रीय सिद्धान्तों का आधार नहीं लिया जाता है। इसमें आलोचक की रुचि को महत्ता प्राप्त होती है। कृति का जैसा प्रभाव आलोचक के मन पर पड़ता है, उसे वह उसी रूप में अंकित कर देता है। प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा की अपेक्षा समीक्षक के व्यक्तित्व का उद्घाटन अधिक होता है। इसीलिए प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा को निबन्ध माना जाता है। इस प्रकार की समीक्षा की ओर अब प्रवृत्ति नहीं रह गयी है।

(4) व्याख्यात्मक समीक्षा- इसमें आलोच्य को उसकी परिस्थिति के बीच रखकर देखा जाता है और समाज के लिए उसकी उपादेयता पर विचार किया जाता है। इस प्रकार की उसकी उपादेयता पर विचार किया जाता है। इस प्रकार की समीक्षा प्रस्तुत करने वाला समीक्षक एक वैज्ञानिक की तरह कृति व कृतिकार का विश्लेषण करता है। इसीलिए इसमें वैज्ञानिकता अधिक पाई जाती है। इसके प्रमुख तीन रूप हैं -

(अ) ऐतिहासिक समीक्षा- फ्रांसीसी आलोचक हेन ने सर्वप्रथम ऐतिहासिक समीक्षा का लेखन किया। ऐतिहासिक समीक्षा का कर्ता कृति या कृतिकार को उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर देखता है। आलोचक आलोच्य कृति को जब उस राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक परिवेश में रखकर देखता है, जिसमें वह कृति प्रस्तुत की गई थी, तब ऐतिहासिक समीक्षा मानी जाती है।

(ब) तुलनात्मक समीक्षा- इस प्रकार की समीक्षा में तुलना की स्थिति मान्य होती है। आलोच्य की तुलना किसी अन्य से करते हुए उसके गुण-दोषों पर प्रकाश डालना तुलनात्मक समीक्षा का विषय है। तुलनात्मक समीक्षा में देशकाल का बन्धन टूट जाता है। एक देश के साहित्यकार की तुलना दूसरे युग के साहित्यकार से की जा सकती है। कालिदास के संबंध में समीक्षा करते समय उनकी तुलना शेक्सपीयर से करना देश की सीमा को अस्वीकृत करने पर ही संभव होता है। इसी प्रकार मीरा के साथ महादेवी की तुलना का कार्य युग की सीमा को छोड़ने पर ही संपन्न होता है। तुलनात्मक समीक्षा में आलोचक समानताओं-असमानताओं दोनों को ही प्रस्तुत करता हुआ अपना निर्णय प्रकाशित करता है।

(स) पदोन्मुखी समीक्षा इस प्रकार की समीक्षा के दो रूप हैं -

(क) प्रगतिवादी समीक्षा- इस समीक्षा को 'समाजशास्त्रीय समीक्षा' भी कहते हैं। प्रगतिवादी आलोचक यह मानता है कि श्रेष्ठ साहित्य में युग जीवन की दिशा को निर्दिष्ट करने की क्षमता होती है। कृति और कृतिकार ने जनता और उसकी मनोवृत्ति को परिवर्तित करने या यूँ कहिए कि प्रगतिशील बनाने में कितना योगदान किया है, इस दृष्टि से ही प्रगतिवादी आलोचक आलोच्य का मूल्यांकन करता है। प्रगतिवादी समीक्षा में स्थूल सामाजिक रूप पर ही आर्थिक दृष्टि रहती है। जीवन के सूक्ष्म स्पन्दनों को न देखना इसका दोष माना जाता है।

(ख) मनोविश्लेषणवादी समीक्षा- रचयिता के वैयक्तिक मनोविज्ञान पर विचार करते हुए मनोवैज्ञानिकों ने अंतश्चेतना को साहित्य का आधार माना है। इसी आधार की स्वीकृति देता हुआ

मनोविश्लेषणवादी आलोचक रचयिता की मनःस्थिति का विश्लेषण करता है और इसी विश्लेषण प्रक्रिया से वह रचना की व्याख्या करता है। मनोविश्लेषणवादी आलोचना पद्धति के कृतिकार की मानसिक आवश्यकताओं का अध्ययन कर यह देखा जाता है कि कृति इन आवश्यकताओं की पूर्ति में किस हद तक सफल रही है।

पाश्चात्य समालोचना पद्धति, आलोचना को भिन्न प्रकार से वर्गीकृत करती है। इसके आधार पर आलोचना के निम्नांकित चार रूप हैं। -

- (1) रूपवादी आलोचना।
- (2) ऐतिहासिक आलोचना।
- (3) विद्यागत आलोचना।
- (4) अन्तर्विषयी आलोचना।

प्रश्न 16- आलोचना क्या है? इसके प्रमुख उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- आलोचना साहित्य की किसी रचना, लेखक या विचार का तर्कपूर्ण, निष्पक्ष और विवेकपूर्ण मूल्यांकन है। 'आलोचना' शब्द का अर्थ किसी विषय को चारों ओर से देखकर उसके गुण-दोषों का विवेचन करना है। साहित्यिक आलोचना में रचना के कथ्य, भाषा, शैली, भाव, विचार, शिल्प, पात्र, उद्देश्य तथा सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों का अध्ययन किया जाता है।

आलोचना का मुख्य उद्देश्य साहित्यिक रचना के वास्तविक स्वरूप और महत्व को समझना तथा पाठकों के सामने उसकी विशेषताओं को स्पष्ट करना है। एक अच्छी आलोचना केवल दोषों को खोजने का कार्य नहीं करती, बल्कि रचना के गुणों और सीमाओं दोनों का संतुलित विश्लेषण करती है। आलोचक को व्यक्तिगत पक्षपात से बचकर तर्क और प्रमाण के आधार पर अपना मत प्रस्तुत करना चाहिए।

आलोचना साहित्य के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके माध्यम से श्रेष्ठ साहित्य की पहचान होती है और साहित्यकारों की रचनात्मक विशेषताओं को समझने में सहायता मिलती है। आलोचना पाठक की साहित्यिक समझ और रुचि को विकसित करती है। इस प्रकार आलोचना साहित्य को समझने, परखने और उसके महत्व को स्थापित करने की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

प्रश्न 17- साहित्यिक आलोचना की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

उत्तर- साहित्यिक आलोचना की सबसे प्रमुख विशेषता उसका तर्कपूर्ण और विवेकपूर्ण होना है। आलोचक किसी रचना का मूल्यांकन केवल व्यक्तिगत पसंद या नापसंद के आधार पर नहीं करता, बल्कि रचना के विभिन्न पक्षों का गहन अध्ययन करता है।

आलोचना में निष्पक्षता का विशेष महत्व है। आलोचक को लेखक या रचना के प्रति पूर्वाग्रह से बचना चाहिए। वह रचना के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों को सामने रखता है। दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता विश्लेषणात्मक दृष्टि है। आलोचक कथानक, पात्र, भाषा, शैली, भाव, विचार और शिल्प आदि का विश्लेषण करता है।

साहित्यिक आलोचना में ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों का भी महत्व होता है। किसी रचना को उसके समय और परिस्थितियों से जोड़कर देखने से उसके वास्तविक अर्थ को समझने में सहायता मिलती है।

एक अच्छी आलोचना में प्रमाण, तर्क, संतुलन और स्पष्टता होनी चाहिए। आलोचना का उद्देश्य केवल कमियाँ निकालना नहीं, बल्कि रचना के साहित्यिक मूल्य को स्पष्ट करना है। इसलिए साहित्यिक आलोचना साहित्य के अध्ययन और मूल्यांकन का महत्वपूर्ण माध्यम है।

प्रश्न 18- आलोचक कौन होता है?

उत्तर- आलोचक वह व्यक्ति होता है जो किसी साहित्यिक रचना-जैसे कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि का गहराई से अध्ययन, विश्लेषण और मूल्यांकन करता है। वह रचना के गुण-दोष, विषय-वस्तु, भाषा, शैली, भाव, शिल्प तथा सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों को समझकर उसके साहित्यिक महत्व को स्पष्ट करता है।

आलोचक का उद्देश्य केवल रचना में कमियाँ निकालना नहीं होता, बल्कि उसके सौंदर्य, विशेषताओं और सीमाओं को संतुलित एवं तर्कपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना होता है।

प्रश्न 19- आलोचक के प्रमुख गुण कौन से होते हैं ?

उत्तर- एक अच्छे आलोचक के प्रमुख गुण

1.साहित्य का व्यापक ज्ञान- आलोचक को साहित्य और साहित्यिक परंपराओं का अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

2. तटस्थता - उसे व्यक्तिगत पसंद-नापसंद से ऊपर उठकर निष्पक्ष मूल्यांकन करना चाहिए।

3.सूक्ष्म दृष्टि - रचना के छोटे-छोटे भावों, प्रतीकों और कलात्मक विशेषताओं को पहचानने की क्षमता होनी चाहिए।

4. तर्कशीलता - आलोचना करते समय अपने विचारों के समर्थन में उचित तर्क और प्रमाण देने चाहिए।

5.सौंदर्य-बोध - साहित्यिक रचना के कलात्मक और भावात्मक सौंदर्य को समझने की क्षमता आवश्यक है।

6.भाषा पर अधिकार- आलोचक की भाषा स्पष्ट, प्रभावशाली और विचारपूर्ण होनी चाहिए।

7.व्यापक दृष्टिकोण - रचना को उसके सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संदर्भों में देखने की क्षमता होनी चाहिए।

8.ईमानदारी - आलोचक को बिना किसी व्यक्तिगत या बाहरी दबाव के अपने निष्पक्ष विचार प्रस्तुत करने चाहिए।

9. विश्लेषण क्षमता- रचना के विषय, पात्र, भाषा, शैली और शिल्प का व्यवस्थित विश्लेषण करना आना चाहिए।

10. संतुलित दृष्टि - अच्छे आलोचक को रचना के गुण और दोष दोनों को समान रूप से सामने रखना चाहिए।

निष्कर्ष- आलोचक साहित्य और पाठक के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु का कार्य करता है। वह साहित्यिक रचना के वास्तविक महत्व और प्रभाव को समझने में पाठक की सहायता करता है।

प्रश्न 20- हिन्दी आलोचना-उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- आलोचना अर्थ एवं स्वरूप

आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति मूलतः लोच् धातु में उपसर्ग आ तथा ल्युट् अन् प्रत्यय के योग से हुई है। संस्कृत शब्द कोष के अनुसार लोच शब्द का अर्थ-देखना है। स्पष्ट है कि किसी वस्तु या रचना का सम्यक् विवेचन अथवा मूल्यांकन आलोचना कहलाता है।

हिन्दी में आलोचना के संकुचित अर्थ को ध्यान में रखते हुए समालोचना शब्द का प्रचलन अधिक देखने को मिलता है। आलोचना और समालोचना दोनों ही समानार्थक शब्द हैं, परन्तु कुछ लोगों ने आलोचना को दोषारोपण के अर्थ में ग्रहण कर लिया इस दोष के निवारण के लिए अब अधिकतर समालोचना शब्द ही प्रयोग में लाया जाता है ताकि इस तरह किसी रचना के गुण दोष का समान रूप से मूल्यांकन करने के लिए समालोचना शब्द को ही अधिमान

दिया जाने लगा। वर्तमान में इस पद्धति के लिए समीक्षा शब्द का अधिक प्रयोग हो रहा है। समीक्षा शब्द का संस्कृत ग्रंथों में भी प्रयोग हुआ है-

अन्तर्भाष्य अवान्तरार्थ विच्छेदश्च समीक्षा। अर्थात् किसी रचना के गुण-दोषों तक सीमित न रहकर जब उसकी आन्तरिक प्रकृति अथवा विशेषता और अवान्तरार्थों की छानबीन की जाए, तब उसे समीक्षा कहा जाता है। काव्य शास्त्रीय विवेचन भी आलोचना का एक अंग ही है।

हिन्दी आलोचना-उद्भव एवं विकास-

वास्तव में किसी भी भाषा के उद्भव के साथ ही उसकी आलोचना का भी उद्भव मानना चाहिए, परन्तु जिस प्रकार हिन्दी साहित्य विशेषकर काव्य का मूल संस्कृत काव्य से सम्पृक्त है, उसी प्रकार हिन्दी आलोचना का मूल भी संस्कृत आलोचना से जुड़ा हुआ है। फिर भी इसे पूर्णतः संस्कृत से ही जुड़ा हुआ ही मान लिया जाए तो अन्याय होगा, क्योंकि आदि कालीन, भक्तिकालीन, व रीतिकालीन हिन्दी आलोचना संस्कृत के काव्य शास्त्र से जुड़ी है परन्तु वर्तमान कालीन हिन्दी आलोचना या समीक्षा पाश्चात्य व्यावहारिक समीक्षा से जुड़ी है।

हिन्दी आलोचना का प्रारम्भिक स्वरूप हमें आदि कालीन साहित्यकार विद्यापति की रचना में उपलब्ध हो जाता है। 1 इससे पूर्व भी आलोचना का अस्तित्व अवश्य सम्भव है, इसे जानने के लिए यद्यपि अनेक प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। हिन्दी आलोचना के क्रमिक विकास को देखने के लिए हिन्दी साहित्य को विभाजित करके सरलता से जाना जा सकता है।

आदिकालीन आलोचना-

यह सत्य है कि आदिकालीन एवं भक्तिकालीन रचनाओं में किसी स्वतंत्र चिंतन के संकेत नहीं मिलते, परन्तु कुछ कवियों की रचनाओं में उनकी आलोचनात्मक दृष्टि तथा काव्य-सिद्धान्त सम्बन्धी विचार अवश्य मिलते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने भी इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए इस काल की अप्रत्यक्ष आलोचना को नकारा नहीं जा सकता। उनका मत है कि उनका अवमूल्यन कदापि नहीं किया जा सकता, क्योंकि भावी आलोचना के विशाल प्रसाद की नींव के रूप में वह महत्वपूर्ण है।

विद्यापति का एक सन्दर्भ इस काल की आलोचना का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। विद्यापति ने अपनी प्रसिद्ध रचना कीर्तिलता में आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय देते हुए कहा है कि काव्य तो लोक-हृदय के लिए आह्लाद कारक वस्तु है, दुर्जनों के उपहास से उसकी आभा कभी मलिन नहीं पड़ सकती-

“बालचन्द बिज्जावड भाषा, दुछुनहिं लगई दुज्जन हासा।

ओ परमेसर हर-सिरकोई, ई गिच्चइ नाउर मन मोहई॥”

भक्ति-काल में आलोचना का स्वरूप-

इस काल में हिन्दी आलोचना का अधिक विकास दिखाई नहीं देता, न ही इस काल में आदि काल की तरह किसी स्वतंत्र ग्रंथ की रचना हुई। फिर भी यह तो सत्य है कि अनेक कवियों के काव्य में काव्य-सिद्धान्त से सम्बन्धित बड़ी विशद चर्चा अवश्य देखने को मिलती है। इन

कवियों ने बड़े ही विवेक पूर्ण ढंग से इन क्लिष्ट विषयों पर अपने स्वतंत्र विचार प्रस्तुत किए हैं जो हिन्दी साहित्य की आलोचना का प्रारम्भिक रूप है। इन कवियों में मुख्यतः जायसी, सूरदास, तुलसीदास, रहीम नन्ददास आदि की रचनाओं में इस आलोचना का आरम्भिक स्वरूप दिखाई देता है। जायसी ने अपनी प्रसिद्ध रचना पद्मावत में काव्यरचना के मुख्य उद्देश्यों पर प्रकाश डाला है। जायसी ने स्पष्ट कहा है कि काव्य रचना का उद्देश्य यश अथवा कीर्ति मुख्य है। उन्होंने संस्कृत आचार्यों की ही तरह ही पद्मावत में यश की कामना की है, जो आचार्य दण्डी, वामन, आदि के काव्य सिद्धान्तों के ही अनुकूल है। इस काल के मूर्धन्य कवि गोस्वामी तुलसी दास ने तो रामचरितमानस में काव्यरचना के उद्देश्य को अपनी ओर से स्पष्ट कर दिया है-स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा। उन्होंने साहित्यिक रचना को लोक हित से भी जोड़कर देखा है-

कीरति भनिति भलि सोई। सुरसरिसम सब कहं हित होई॥

इसी प्रकार एक और स्थान पर भी तुलसी ने कुन्तक की वक्रोक्ति के अनुरूप ही शब्दार्थ की व्यंजना शब्द में अर्थ-शक्ति के समावेश की चर्चा की है-

गिरा अरथ जल-बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।

इसके अतिरिक्त कुछ टीकाएं भी मिलती हैं, उन्हें व्याख्यात्मक आलोचना के अन्तर्गत लिया जा सकता है, परन्तु इन टीकाओं को शुद्ध व्याख्यात्मक आलोचना के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता। भक्ति काल में सूरदास की साहित्यलहरी तथा नन्ददास की रसमंजरी में नायक-नायिका भेद की चर्चा तो मिलती है परन्तु इन्हें शुद्ध आलोचना के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता, क्योंकि इनमें काव्यांग विवेचन नहीं के बराबर है तथा भक्ति भावना का अधिक वर्णन है। इसी प्रकार रहीम की बरवे नायिका भेद, तथा नाभा दास की भक्तमाल, में भी काव्यांग विवेचन कम होने के कारण इन्हें आलोचना के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता। इस तरह इस काल में साहित्यलहरी व रसमंजरी को छोड़ कर किसी भी रचना को आलोचना के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता । इससे एक बात तो साफ है कि इस काल में बेशक आलोचना की उच्च कोटी की रचनाओं का अभाव है परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आलोचना प्रारम्भिक स्वरूप इस काल में ही दिखाई देने लग गया था। आलोचना का सही अर्थों में विकास रीति काल में ही दिखाई देता है।

रीति काल में आलोचना का विकास-

रीति काल में काव्यसिद्धान्तों या काव्यांगों का विवेचन करने वाले अनेक ग्रंथ मिलते हैं। वास्तव में केशवदास को इस काल की सैद्धान्तिक आलोचना का सूत्रपात करने वाला कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कवि पद्माकर को इस श्रृंखला की अन्तिम कड़ी कहा जा सकता है। इस काल के प्रमुख आलोचनात्मक ग्रंथों में कविप्रिया, रसिकप्रिया, केशवदास की रचनाएं, तथा चिन्तामणि की कवि कुल कल्पतरु, रसमंजरी, पिंगल, देव की रसविलास, भावविलास, शब्दरसायन, भिखारीदास की-श्रृंगार निर्णय, काव्यनिर्णय पद्माकर की जगद्विनोद तथा मतिराम की ललितललाम, रसराज प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त अन्य और भी आलोचनात्मक

रचनाएं उपलब्ध हैं। कुलपति मिश्र, सोमनाथ, रसिक गोविन्द, ग्वालकवि, रसलीन, आदि अन्य प्रमुख कवि हैं, जिन्होंने आलोचनात्मक ग्रंथ लिखे। इसके अतिरिक्त अन्य लेखक भी हैं जिन्होंने स्वतंत्र रूप से सैद्धान्तिक आलोचना को आधार बना कर आलोचनात्मक ग्रंथों की रचना की।

आधुनिक काल में आलोचना का विकास-

इस काल में भी हिन्दी आलोचना का समुचित विकास देखने को मिलता है। इस काल की आलोचना की खास बात यह है कि इस काल में रीति कालीन आलोचना पद्धति से निकल कर एक नए मार्ग की ओर प्रशस्त होती दिखाई देती है। इसके मुख्य कारण गद्य का आविर्भाव, पत्रपत्रिकाओं का प्रचलन, पाश्चात्य समीक्षाजगत से सम्पर्क, तथा पाठकों में चेतना का विकास हो सकता है। इस काल की आलोचना को निम्न लिखित उपभागों में बांटा जा सकता है-

1. भारतेन्दु युग, 2. द्विवेदी युग, 3. शुक्ल युग, 4. शुक्लोत्तरयुग ।

1. भारतेन्दु युग-

इस युग से ही कुछ विद्वान हिन्दी आलोचना का विकास मानते हैं। इस युग में सैद्धान्तिक आलोचना के साथ व्यावहारिक आलोचना के भी दर्शन होते हैं। सैद्धान्तिक आलोचना में भारतेन्दु का नाटक सबसे पहले गिनने योग्य है। इस ग्रंथ में नाटक से सम्बन्धित चर्चा की गई है। इसके उपरान्त हिन्दी सैद्धान्तिक आलोचना के विकास में जिनका महत्व पूर्ण योगदान रहा उनका उल्लेख करना आवश्यक है। जगन्नाथ प्रसाद भानु, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री, साहब प्रसाद सिंह, बिहारी लाल जगन्नाथ प्रभाकर आदि के नाम मुख्य हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका के माध्यम से अनेक साहित्यकारों के जीवन, रचना प्रामाणिकता आदि के विषय में अनेक व्यावहारिक समीक्षात्मक ग्रंथ प्रकाश में आए। शिव सिंह सेंगर की रचना शिवसिंह सरोज इसी व्यावहारिक आलोचना का प्रारम्भिक रूप है। कुछ पत्र पत्रिकाओं ने भी इस युग में आलोचना में महत्वपूर्ण योगदान दिया। बदरीनारायण प्रेमघन ने हिन्दी प्रदीप तथा आनन्द कादम्बिनी नामक पत्रों में श्रीनिवास कृत संयोगिता स्वयंवर, तथा बंग विजेता की विस्तृत समीक्षा की।

2. द्विवेदी युग

सन् 1900 में हिन्दी पत्रिका सरस्वति का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद के सम्पादन में पर्याप्त आलोचना हुई। इसमें पुस्तक समीक्षा नामक एक स्तम्भ रखा गया, और स्वयं पुस्तकों की समीक्षा प्रारम्भ की। बनारस से प्रकाशित सुदर्शन तथा जयपुर से प्रकाशित समालोचक पत्र में भी अनेक रचनाओं की समीक्षा की गई। द्विवेदी युग में हिन्दी आलोचना के मुख्यतः निम्न लिखित रूप दिखाई देते हैं-

क. शास्त्रीय आलोचना

ख. तुलनात्मक आलोचना

ग. परिचयात्मक आलोचना

घ. व्याख्यात्मक आलोचना

क. शास्त्रीय आलोचना- के अन्तर्गत जगन्नाथ भानुकी रचना काव्य प्रभाकर छंद सारावली तथा लाला भगवान दीन की रचना अलंकार मंजूषा मुख्य हैं।

ख. तुलनात्मक आलोचना-के लिए द्विवेदी काल को उद्भव काल कहा जा सकता है। हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना का श्रीगणेश पद्म सिंह शर्मा द्वारा माना जाता है। मिश्र बन्धुओं ने हिन्दी नवरत्न के प्रकाशन के माध्यम से तुलनात्मक आलोचना का विकास किया।

ग. परिचयात्मक आलोचना- स्वयं आचार्य द्विवेदी ने अपने पत्र सरस्वती में परिचयात्मक आलोचना लिखी आचार्यद्विवेदी निडर आलोचक थे तथा किसी भी कृति में स्पष्ट रूप से पक्षपात के बिना उदोष निकाल कर सामने ले आते थे। उनकी आलोचना में खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति साफ दिखाई देती है।

घ. व्याख्यात्मक आलोचना- बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी प्रदीप पत्र में नीलदेवी, परीक्षागुरु, संयोगिता स्वयंवर की व्याख्यात्मक आलोचना करके इसका विकास किया। बालमुकुन्द गुप्त ने हिन्दी बंगवासीपत्र में अनुमतीनाटक, की व्याख्यात्मक आलोचना की। किशोरी लाल गोस्वामी कृत उपन्यास तारा की व्याख्यात्मक समीक्षा समालोचक पत्र में तथा श्रीनिवास कृत परीक्षागुरु की समीक्षा छत्तीसगढ़ मित्र में प्रकाशित हुई 14

3. शुक्ल युग

हिन्दी आलोचना में शुक्ल युग को सबसे बेहतर युग माना जाता है। आचार्य शुक्ल ने द्विवेदी युग में ही आलोचना जगत में आए, परन्तु अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण हिन्दी के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच कर हिन्दी आलोचना को भी विकसित किया। शुक्ल जी ने हिन्दी आलोचना को वैज्ञानिकता प्रदान की। हिन्दी आलोचना के इस काल को उसके उत्थान का तृतीयकाल कहा है। उन्होंने लिखा है कि- तृतीय उत्थान में समालोचना का आदर्श भी बदला, गुण-दोष के कथन के आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और अन्तः प्रवृत्तियों की छानबीन की ओर भी ध्यान दिया गया।

आचार्य शुक्ल के समय में प्रचलित द्विवेदी-युगीन नैतिकता और इतिवृत्तात्मकता के विरोध में छायावाद का उदय हो चुका था। नए युग और नई प्रवृत्ति के लिए नए प्रकार की आलोचना की आवश्यकता थी। इस समय अब नवीन काव्य एवं अन्य साहित्य के लिए पुरानी काव्यशास्त्रीय पद्धति पर मूल्यांकन करना सम्भव नहीं था। आचार्य शुक्ल ने आलोचना की बागडोर अपने हाथ में लेकर आलोचना का केन्द्र हिन्दी के भक्तिकाल को बना दिया, तथा स्वयं तुलसी, सूरदास, व जायसी पर विस्तृत समीक्षाएं लिखीं। कविता में अनुभूति को प्रधानता प्रदान की। इस काल में शुक्ल कालीन हिन्दी आलोचना का अवलोकन दो भागों में बांट कर किया जा सकता है।

क. सिद्धान्त या लक्षणग्रंथ की रचना तथा सैद्धान्तिक आलोचना।

ख. व्यावहारिक आलोचना

क.सैद्धान्तिक आलोचना-

शुक्ल काल में भी कुछ लक्षण ग्रंथों की रचना हुई तथा काव्यांगों का विवेचन हुआ। शुक्ल जी ने इस काल में आलोचना के क्षेत्र में सर्वाधिक योगदान दिया। इससे पूर्व द्विवेदी युग में भी उनकी आलोचनात्मक रचनाएं कविता क्या है, तथा साहित्य आदि आ चुकी थीं। उनकी सैद्धान्तिक आलोचना की कृति काव्य में रहस्यवाद, रसमीमासा भी इसी युग में प्रकाशित हुई। आचार्य शुक्ल के इलावा गुलाब राय की नवरस, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की काव्यांग कौमुदी, श्यामसुन्दरदास की साहित्यालोचन, लक्ष्मी नारायण सुधांशु की रचना काव्य में अभिव्यंजनावाद, रमाशंकर शुक्ल रसाल की रचना आलोचनादर्श, डॉ रामकुमार वर्मा की साहित्य समालोचना विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त भगवानदीन कन्हैयालालपोद्दार आदि का नाम भी सैद्धान्तिक आलोचना में लिया जा सकता है।

ख. व्यावहारिक आलोचना-

इस युग में शुक्ल जी ने ही व्याख्यात्मक आलोचना में गोस्वामी तुलसी दास, जायसी ग्रंथावली आदि के द्वारा कवि के काव्यगुणों का परिचय करवाया। इसी तरह भ्रमर गीत सार का भी शुक्ल जी ने सम्पादन किया।

इस युग के अन्य व्यावहारिक आलोचकों में कृष्ण शंकर शुक्ल की रचना केशव की काव्य कला, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की बिहारी की वाग्विभूति, रामकृष्ण शुक्ल की प्रसाद की नाट्य कला, डॉ रामकुमार वर्मा की वर्मा की कबीर का रहस्यवाद, हस्यवाद, जनार्दन मिश्र की विद्यापति, भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र की मीरा की प्रेम साधना, रामनाथ सुमन की महाकवि हरिऔध, गुप्त जी की काव्यधारा आदि का नाम उल्लेखनीय है।

4. आधुनिक युग-

शुक्ल युग के उपरान्त आधुनिक युग का कम आता है। इसकाल के प्रमुख आलोचकों में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ नगेन्द्र, डॉ राम विलास शर्मा, डॉ देवराज, डॉ देवराज उपाध्याय, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, डॉ माताप्रसाद गुप्त, डॉ सत्येन्द्र आदि का नाम विशेष उल्लेख्य है। इनमें आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के ग्रंथ आधुनिकसाहित्य, नयासाहित्य, नए प्रश्न, कवि निराला, आदि में छायावादी काव्य की नूतन कल्पना छवियों, भावों व भाषारूपों की समालोचना की।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ हिन्दी साहित्य की भूमिका में आलोचना के नए प्रतिमान स्थापित किए। सूरसाहित्य में उनकी छायावादी भावुकता का प्राधान्य दिखाई देता है। कबीर में उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण का प्रायोगिक रूप स्पष्ट दिखाई देता है।

डॉ नगेन्द्र को व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक समीक्षक कहा जाता है। उनके सैद्धान्तिक ग्रंथ रस सिद्धान्त में रस का सांगोपांग वर्णन मिलता है। सुमित्रानन्दन पन्त में उन्होंने छायावादी काव्य की अन्तर्मुखी साधना, सौन्दर्य चेतना, आदि के दृष्टि कोण से पंथ के काव्य की समीक्षा की है। साकेत एक अध्ययन नामक शास्त्रीय समीक्षात्मक ग्रंथ की रचना की। आधुनिक हिन्दी नाटक, विचार और अनुभूति, तथा आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां जैसे समीक्षात्मक

ग्रंथों की भी रचना की है। नयी समीक्षा-नए संदर्भ, कामायनी के अध्ययन की समस्याएं आदि उनके अन्य महत्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रंथ हैं।

डॉ राम विलास शर्मा को मार्क्सवादी आलोचना का स्तम्भ माना जाता है। शिवदान सिंह चौहान बेशक इस आलोचना के प्रवर्तक माने जाते हैं, परन्तु जिस प्रकार की गवेषणात्मक दृष्टि राम विलास शर्मा की है वैसी अन्य आलोचकों की नहीं है। प्रगति और परम्परा, प्रगति शीलसाहित्य की समस्याएं, आस्था और सौन्दर्य आदि में उनके मार्क्सवादी आलोचना संबंधी दृष्टिकोण प्रस्तुत हुआ है।

आधुनिक काल में अन्य अनेक प्रकार की आलोचना की धाराएं प्रवाहित हो रही हैं। प्रभाववादी आलोचना, मार्क्सवादी आलोचना, मनोविश्लेषणात्मक आलोचना, स्वच्छन्दतावादी आलोचना, सैद्धान्तिक आलोचना प्रमुख हैं। हिन्दी आलोचना में आज भी निरन्तर विकास हो रहा है। डॉ नामवर सिंह, डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ शिवप्रसाद सिंह आदि आलोचक इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

प्रश्न 21- हिन्दी आलोचना के विकास में डॉ. रामविलास शर्मा के योगदान बताइए।

उत्तर - डॉ. रामविलास शर्मा मार्क्सवादी आलोचक हैं। उनके संबन्ध में डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है "मार्क्सवादी आलोचकों में डॉ. रामविलास शर्मा की दृष्टि सबसे अधिक पैनी, स्वच्छ और तलस्पर्शी है। विचारों के स्तर पर वे कहीं भी समझौता नहीं करते। वे बहुत ही खरे दो टूक बात कहने वाले निर्भीक आलोचक हैं। मार्क्सवादी आलोचना का प्रादुर्भाव शर्मा जी से पूर्व ही हो चुका था। 'हंस' के संपादक के रूप में डॉ. शिवदान सिंह चौहान उसके सैद्धान्तिक पक्ष पर बहुत कुछ लिख चुके थे। प्रकाशचन्द गुप्त ने भी इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये थे। आरम्भ में प्रगतिवाद साहित्य की व्यापक प्रगतिशील चेतना के उन्मेष को लेकर अवतीर्ण हुआ था, किन्तु बाद में उसका आशय कम्युनिष्ट पार्टी की नीतियों का उद्घोषणा मात्र रह गया था। कम्युनिष्ट पार्टी अर्थात् मार्क्सवादी साहित्यकार केवल उस साहित्य को उत्तम मानते थे, जिनमें सर्वहारा वर्ग के वर्ग संघर्ष का चित्रण हो, पार्टी की नीतियों के आधार पर जनता को सशस्त्र क्रान्ति की चेतना प्रदान की गई हो। इस संकीर्णता की कटु आलोचना भी हुई। शनैः शनैः साहित्यकारों ने संकीर्णता से मुक्त होने का प्रयास भी किया। जहाँ तक डॉ. रामविलास शर्मा का प्रश्न है, वे मार्क्सवादी आलोचक होने के कारण साहित्य में सर्वहारा वर्ग के चित्रण पर बल देते हैं। 'साहित्य संदेश' में प्रकाशित अपने एक लेख में उन्होंने कहा है- "साहित्य लिखते समय साहित्यकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह 'सर्वहारा' का सहयोगी साहित्य निर्मित करे। परन्तु यह एक संकीर्ण मनोवृत्ति है। समाज में केवल सर्वहारा वर्ग की ही समस्याएँ नहीं हैं, वर्ग-वैषम्य से पीड़ित जनता भी है। क्या प्रगतिशील साहित्य को उनके विषय में नहीं सोचना चाहिए? केवल 'सर्वहारा वर्ग की बात कहना साहित्य को संकीर्ण परिधि में आबद्ध कर देता है।

रामविलास शर्मा की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने हर नये का समर्थन और प्राचीन का विरोध नहीं किया। उन्होंने उन मार्क्सवादी आलोचकों पर आरोप लगाया, जिन्होंने पक्तियाँ खोज-खोजकर तुलसीदास की प्रतिक्रियावादी, ब्राह्मणवादी आदि सब कुछ कहा है। उनका मत है - "यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने साहित्य की पुरानी परम्पराओं से परिचित हों। परिचित होने के साथ-साथ हमें उनके श्रेष्ठ तत्वों को भी ग्रहण करें।

रामविलास शर्मा की समीक्षा-शैली की प्रमुख विशेषता है, व्यंग्य की मार करना। डॉ. नगेन्द्र की विचार और अनुभूति नामक पुस्तक पर चुटकी लेते हुए वे कहते हैं कि- "नगेन्द्र जी के विचार उन्हें एक कदम आगे ढकेलते हैं, तो उनकी अनुभूति उन्हें चार कदम पीछे घसीट ले जाती है। इस पुस्तक का नाम एक कदम आगे और चार कदम पीछे भी हो सकता है।"

एक अन्य उदाहरण देखिए-

"डॉ. नगेन्द्र के यहाँ हर चीज शुद्ध है। उदाहरण देखिए -

- (1) साहित्य के क्षेत्र में तो शुद्ध मनोविज्ञान का अधिक विश्वास उचित होगा।
- (2) लोक प्रचलित अस्थायी भावों के द्वारा साहित्य का रस शुद्ध हो जाता है।
- (3) छायावाद निश्चित ही शुद्ध कविता है। हम अपनी तरफ से यही कह सकते हैं कि नगेन्द्र जी की आलोचना बिल्कुल शुद्ध आलोचना होती है।

शर्मा जी की समीक्षा शैली की एक अन्य विशेषता यह है कि उसमें उदाहरण विद्यमान रहते हैं। इससे आलोचना में बल आ जाता है। उन्होंने जब महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की विचारधारा की आलोचना की थी, तो साहित्य में जैसे एक भूचाल आ गया था। किन्तु उन्होंने प्रमाण देकर अपनी बात कही थी, इसलिए आने वाले तूफान से अप्रभावित रहे। स्वयं उनकी आलोचनो जब अमृतराय ने 'हंस' में की तो उन्होंने यही कहा कि आप प्रमाण दीजिए, बिना प्रमाण दिये मैं आपके किसी आरोप पर गम्भीरता से विचार नहीं करूँगा।

डॉ. रामविलास शर्मा की विचारधारा में काव्यशास्त्र की परम्परागत मान्यताओं के लिए कोई स्थान नहीं। वे रस और अलंकार विषयक प्राचीन मान्यताओं के विरुद्ध हैं। रस को 'ब्रह्मानन्द सहादर' कहने वालों के साथ उन्होंने खूब चुटकियाँ ली हैं। आधुनिक युग में प्राचीन रस- सिद्धांत की निःसरता उन्होंने सिद्ध की है। परन्तु इसका आशय यह नहीं है कि वे हर प्राचीनता के विरोधी हैं। हम देख चुके हैं कि वे सन्त-साहित्य और तुलसी के प्रशंसक रहे हैं। मध्यकालीन हिन्दी कविता में गेयता में वे लिखते हैं "गाँव के किसानों को आए दिन के व्यवहार में तुलसी, रहीम, सूर, गिरधर आदि की उक्तियाँ उद्धृत करते सुनिए तो पता चलेगा कि वे साहित्यकारों के शब्दों को किस प्रकार अपने जीवन में परखते चलते हैं। जो साहित्य इस तरह उनके जीवन में घुल-मिल जाता है, वही टिकाऊ होता है, दूसरा नहीं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डॉ. रामविलास शर्मा आधुनिक हिन्दी आलोचकों की अग्रिम पंक्ति में आसीन हैं।

प्रश्न 22- स्वच्छंदतावाद के अर्थ और स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - स्वच्छंदतावाद का उदय शास्त्रवाद की नियमबद्धता एवं जड़ संस्कारों के खिलाफ हुआ। स्वच्छंदतावाद का मूल प्रवर्तक रूसो था, लेकिन इस वाद ने अपना सही आयाम वर्ड्सवर्थ की रचना 'Lyrical Ballads' की भूमिका में ग्रहण किया। शैली, कीट्स एवं कॉलरिज जैसे रचनाकारों ने इस वाद को पूरी तरह से विकसित किया।

स्वच्छंदतावाद अंग्रेजी शब्द 'Romanticism' का हिन्दी अनुवाद है। यह शब्द फ्रांसीसी शब्द Romanz (रोमांज) या रोमांस से लिया गया है परन्तु इसका अर्थ हमेशा बदलता रहा है। 17वीं शताब्दी में इसका अर्थ किया गया था 'काल्पनिक और असत्य'। 19वीं शताब्दी में इसके प्रयोग उपन्यास के अर्थ में होने लगा। आगे चलकर इस शब्द का प्रयोग प्राकृतिक दृश्यों के अर्थ में होने लगा। बाद में प्रेम और विशाद को भी इसके अर्थ में समाहित कर दिया। साहित्यिक रूप में इसका सर्वप्रथम प्रयोग फ्रांस में हुआ। वहाँ इसका अर्थ किया गया, 'साहसशील, भावनाशील और कल्पनाशील।' बाद में इसके अर्थ में उन्मुक्तता को भी जोड़ दिया गया। फ्रांस की राज्य क्रान्ति के बाद में यह शब्द विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों का सूचक बन गया। अब इसका अर्थ हो गया- "काव्य की मुक्त एवं स्वच्छंद अभिव्यक्ति प्रणाली है।" स्वच्छंदतावादी कवि वही हो सकता है जो कवि संसार से दूर रहकर आत्मानंद में लीन रहता है। वह दुःखवाद से घिरा होने पर दुःख में सुख का अनुभव करता है। उसमें वैयक्तिकता की प्रधानता होती है। वह नियमों और परम्पराओं का उल्लंघन करके मुक्त भावनाओं में विचरण करना चाहता है।

परिभाषाएँ - फिर भी स्वच्छंदतावाद क्या है? अथवा इसकी स्पष्ट परिभाषा क्या हो सकती है? इसका उत्तर देना सहज नहीं है। स्वच्छंदतावाद का नाम लेते ही आभिजात्यवाद की याद ताजा होती है। अक्सर लोग कह बैठते हैं कि स्वच्छंदतावाद आभिजात्यवादी विचारधारा के विपरीत है। फिर भी कुछ विद्वानों ने स्वच्छंदतावाद की परिभाषाएँ देने का प्रयास किया है।

(1) प्रो. कैजामियाँ के शब्दों में "स्वच्छंदतावाद आत्मा का विजयघोष है तथा भावना प्रेरित कल्पना उसकी मूल प्रवृत्ति है।"

(2) सी. एस. बावरा के अनुसार "स्वच्छंदतावाद की विशेषताएँ हैं, कल्पना में नवीन तथा गहन विश्वास "

(3) एम्बर क्रॉम्बी "स्वच्छंदतावाद को बाह्य अनुभूतियों से पलायन तथा आन्तरिक अनुभूतियों में केन्द्रित होना मानते हैं।"

एक सर्वमान्य परिभाषा - यँ तो हिन्दी के आलोचकों ने भी स्वच्छंदतावाद को परिभाषित करने का प्रयास किया है, लेकिन किसी ने भी ऐसी बोधगम्य परिभाषा नहीं दी जो सभी को मान्य हो। फिर भी हम कह सकते हैं -

"स्वच्छंदतावादी काव्यधारा वह काव्यधारा है, जो प्राचीन सिद्धान्तों की जकड़ से मुक्ति पाकर एक नवीन जीवन की प्रतिष्ठा करना चाहती है, जो नियमों, सिद्धान्तों और परम्पराओं का उल्लंघन करके मुक्त भावनाओं को अभिव्यक्त करती हैं।

प्रश्न 23 आधुनिक साहित्य में मनोविश्लेषणवाद के योगदान की विवेचना कीजिए।

उत्तर - साहित्य के क्षेत्र में मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त का गहरा प्रभाव रहा है। आधुनिक विचारधारा को मनोवैज्ञानिक धरातल पर स्थापित करने का प्रयास फ्रायड, एडलर और युंग ने किया है। मनोविश्लेषण सिद्धान्त के प्रवर्तक फ्रायड हैं और एडलर तथा युंग उनके सहयोगी हैं। यद्यपि इन तीनों ने अपने-अपने पृथक् सिद्धान्त स्थापित किए हैं, परन्तु फ्रायड के सिद्धान्त ने सर्वाधिक प्रभावित किया। इन तीनों विद्वानों द्वारा स्थापित सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

- (1) फ्रायड का मनोविश्लेषण सिद्धान्त 'साइकोएनालिसिस' कहलाता है।
 - (2) एडलर का व्यक्तिगत मनोविज्ञान का सिद्धान्त 'इनडिविजुअल साइकोलॉजी' कहलाता है।
 - (3) युंग का विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान का सिद्धान्त 'एनालिटिकल साइकोलॉजी' कहलाता है।
- ये तीनों मनोवैज्ञानिक 'वृहत्रयी' के नाम से विख्यात हैं।

फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के चार मुख्य सूत्र हैं-

- (1) दृढ़ नियतत्ववाद
- (2) अचेतन मन
- (3) स्वप्न और
- (4) मन की संरचना

नियतत्ववाद का अभिप्राय है कार्यकारण का नियत संबंध अर्थात् प्रत्येक मानसिक व्यापार के मूल में कोई न कोई कारण अवश्य होता है और इस कारण को खोजा जा सकता है।

अचेतन मन: इसके तीन स्तर होते हैं -

- (1) चेतन
- (2) पूर्ण चेतन
- (3) अचेतन।

चेतन मन सामाजिक प्रतिबंधों से जुड़ा रहता है। इसे सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार पर नियन्त्रण रखने वाला कहा जा सकता है। अचेतन मन उन आकांक्षाओं का भण्डार है जो दमित रहने के कारण अत्यन्त व्याकुल रहता है। इन आकांक्षाओं में यौन भावनायें या काम अभिलाषायें प्रमुख हैं। दमित भावनायें आगे चलकर मनोग्रन्थियों का रूप धारण कर लेती हैं। कलात्मक सृजन द्वारा इन मनोग्रन्थियों से मुक्ति मिल जाती है। पूर्ण चेतन मन, चेतन मन और अचेतन मन के मध्य में स्थित रहता है। यह सेंसर का कार्य करता है।

स्वप्न को अचेतन मन की ही अभिव्यक्ति माना जा सकता है यह अतृप्त आकांक्षाओं की तृप्ति का साधन है। स्वप्न का अध्ययन अचेतन मन की जानकारी पाने का महत्वपूर्ण मार्ग है।

फ्रायड ने मन का विभाजन एक अन्य रीति से किया इदम् (इड) अहं (इगो) और अत्यहम् (सुपर इगो)।

इड का अर्थ है अचेतन मन। जैविक संघटन में जो कुछ है वह इदम् में ही रहता है। अहं मूल प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करता है। अनूकूल प्रवृत्तियों का समर्थन करता है और प्रतिकूल प्रवृत्तियों को दबा देता है। यह सचेत रूप से क्रियाशील रहता है। अत्यहम् मूलतः चेतन मन है, जो सामाजिक नियम मर्यादाओं से परिचालित होता है।

एडलर अधिकार - भावना को जीवन की केन्द्रीय प्रेरणा शक्ति मानता है। मनुष्य को सामाजिक कार्यों के क्षेत्र में अपने को समायोजित करना पड़ता है। मनुष्य जब जन्म लेता है तब वह शिशु रूप में अत्यन्त असहाय होता है। उसे पालन-पोषण के लिये दूसरों पर निर्भर रहना होता है। अपनी असहाय स्थिति का बोध होने पर उसके मन में प्रतिक्रिया होती है। इस प्रतिक्रिया के तीन रूप होते हैं -

(1) व्यक्ति एक प्रकार की क्षति या कमी को दूसरे प्रकार के उत्कर्ष विधायक कार्यों से पूरा करता है।

(2) वह कर्म विमुख हो सकता है अथवा अपनी हीनता से समझौता कर लेता है।

(3) वह अति क्षति पूर्ति करने लगता है।

इस समायोजन के अभाव में मनुष्य मनस्तापी और रुग्ण हो जाता है। इस रुग्णता के भी तीन रूप हैं

(1) संरचनात्मक,

(2) क्रियात्मक

(3) मानसिक।

संरचनात्मक रुग्णता के अन्तर्गत शारीरिक विकृति आती है। जैसे अंधा होना, लूला होना, लंगड़ा होना, बहरा होना। क्रियात्मक रुग्णता के अन्तर्गत दर्द आदि होने के कारण चलने फिरने, हाथ उठाने में कठिनाई आदि आती है। मानसिक रुग्णता के अन्तर्गत चिन्ता, भय, उद्वेग, क्षोभ, उदासीनता आदि का समावेश है। फ्रायड की अपेक्षा एडलर का सिद्धान्त अधिक व्यापक है। फ्रायड मनस्ताप को मन की विकृति मानता है और एडलर सम्पूर्ण व्यक्तित्व की विकृति मानता है और एडलर के लिए अधिकार भावना। फ्रायड का उदात्तीकरण और एडलर का क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त एक सा ही है।

मनोवैज्ञानिक शब्दावली एक सीमा तक रचना प्रक्रिया को समझने में सहायता करती है। कवि के हृदय की उस स्थिति को पकड़ा जा सकता है जिसमें वह रचना करता है। साहित्यिक कृतियों में जहाँ-जहाँ कवि या साहित्यकार का आत्मतत्त्व अभिव्यक्त होता है वहाँ-वहाँ मनोविश्लेषण

का सिद्धान्त सत्य तथ्य का निरूपण कर सकता है, परन्तु यह मानना होगा कि रचनायें आत्मतत्त्व से भिन्न कुछ और भी होती हैं। जो कुछ आत्म स्वरूप में समाहित होता है, वहीं अभिव्यक्त नहीं होता। सहजानुभूति-आत्मव्यंजना कवि के मानस से ही मूर्त होकर अपना कार्य समाप्त कर लेती है। शब्दबद्ध होने पर वह नैतिकता आदि से अनिवार्यतः सम्बद्ध हो जाती है। मानसिक अभिव्यंजना और शब्दबद्ध अभिव्यंजना में अन्तर होता है। इस प्रकार मनोविश्लेषण का सिद्धान्त व्यापक स्तर पर आलोचना का प्रतिमान नहीं बन पाया। उसका ग्रहण आंशिक रूप में ही हो सका है।

प्रश्न 24- हिन्दी आलोचना पद्धतियों को बताइए। आलोचना के प्रकारों का भी वर्णन कीजिए।

उत्तर - हिन्दी आलोचना पद्धतियाँ- हिन्दी में प्रचलित आलोचना की पद्धतियाँ आज पाश्चात्य की है, तथापि हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष में संस्कृत आलोचना की भी अनेक पद्धतियाँ हैं। वे इस प्रकार हैं-

- (1) आचार्य-पद्धति
- (2) टीका-पद्धति
- (3) शास्त्रार्थ-पद्धति
- (4) सूक्ति-पद्धति
- (5) खण्डन-पद्धति
- (6) लोचन पद्धति आदि।

आलोचना के प्रकार

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में आलोचना की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं, किन्तु स्थूल रूप से वे दो प्रकार की हैं -

- (1) सैद्धांतिक आलोचना।
- (2) व्यावहारिक आलोचना।

डॉ. श्यामसुन्दर दास ने समालोचना के चार प्रमुख भेद माने हैं-

- (1) आत्मप्रधान प्रभाववादी।
- (2) सैद्धांतिक समीक्षा।
- (3) निर्णयात्मक समीक्षा ।
- (4) व्याख्यात्मक समीक्षा।

व्याख्यात्मक समीक्षा के कुछ अन्य भेद इस प्रकार हैं-

- (1) ऐतिहासिक आलोचना।

- (2) तुलनात्मक आलोचना।
- (3) मनोवैज्ञानिक आलोचना।
- (4) प्रगतिवादी आलोचना।

सैद्धांतिक आलोचना 'सैद्धांतिक आलोचना' आलोचना की एक विशिष्ट पद्धति है। इसमें "बहुत सी अर्थात् एक समान कृतियों का अध्ययन कर जब आलोचक आलोचना के मापदण्ड के रूप में किन्हीं सामान्य नियमों का निर्धारण करता है, तो उस समीक्षा को सैद्धांतिक समीक्षा कहते हैं।"

इस पद्धति के आलोचक की रुचि परिष्कृत होती है, वह नियमों के अनुसार कार्य करता है, अतः इसकी आलोचना की कसौटी उसके निर्धारित मानदण्ड होते हैं। अतः इसमें हम समालोचना का शास्त्रीय-पक्ष स्पष्ट होता हुआ पाते हैं। इसमें उचितानुचित के विवेक को महत्व प्राप्त है। निश्चय ही लेखक को इसमें बहकाने का स्थान नहीं रहता है। इस आलोचना पद्धति का विषय है, साहित्य या काव्य के स्वरूप का विश्लेषण। साहित्य क्या है? कविता क्या है? काव्य का उद्देश्य क्या है? आदि पर इसमें विचार किया जाता है। हडसन ने लिखा है कि, "आलोचक का कार्य केवल यही नहीं है कि वह किसी के औचित्य और अनौचित्य का निर्देश करे, उसका कर्तव्य है कि वह उन सिद्धांतों और नियमों को खोज निकाले। जिसके आधार पर उस काव्य-कृति का निर्माण किया गया और उन नियमों को सिद्धांतों के रूप में निश्चित कर दे।"

प्लेटो और अरस्तू के काव्य- सिद्धांत से लेकर कालरिज एडीसन, वर्ड्सवर्थ, रिचर्डस, क्रॉचे, इलियट आदि के सैद्धांतिक ग्रन्थ और हमारे यहाँ संस्कृत में भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से लेकर जगन्नाथ के रस गंगाधर तक निर्मित संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ और ग्रन्थकार इसी कोटि के समालोचक हैं। "हिन्दी में रीतिकाल के लक्षण ग्रन्थ, श्यामसुन्दर दास का 'साहित्यालोचन', शुक्ल जी की चिन्तामणि', सुधांशु का काव्य में अभिव्यंजनावाद, कन्हैयालाल पोद्दार का 'काव्यकल्पद्रुम' रामदहिन मिश्र का 'काव्यदर्पण' गुलाबराय का 'सिद्धांत और अध्ययन' तथा 'काव्य के रूप' आदि इसी प्रकार के ग्रन्थ हैं।

प्रश्न 25- हिन्दी में ऐतिहासिक आलोचना का आरम्भ कहाँ से हुआ?

उत्तर - हिन्दी में ऐतिहासिक आलोचना के आरम्भ का सवाल जब आता है तो निश्चित रूप से 'यह बात हमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल से करनी पड़ती है। श्री शुक्ल जी ने सूर की कृष्ण परम्परा और तुलसी की राम परम्परा का विवेचन किया है। इन लेखों में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि वैदिककाल से लेकर भक्तिकाल तक विष्णु किन अवस्थाओं को पार करके पहुंचा है और हिन्दुओं ने विष्णु के किस रूप को ग्रहण किया है। इसमें लेखक ने यह भी स्वीकार किया है कि श्रृंगार रस तत्कालीन परिस्थितियों का परिणाम नहीं था। ऐतिहासिक आलोचना पद्धति द्वारा लेखक ने सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सूर और तुलसी की काव्य परम्परा बहुत प्राचीन है। भूषण का विवेचन करते समय लेखक ने तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का विवेचन किया है। लेखक का कहना है कि इन परिस्थितियों ने

भूषण को अत्यधिक प्रभावित किया। कवि यह भी निष्कर्ष देता है कि तुलसी ने रावण में तत्कालीन अत्याचारों का चित्रण है। यह पुस्तक ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति की एक प्रामाणिक रचना है। शुक्ल पद्धति के आलोचकों में पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भूषण ग्रन्थावली की भूमिका में ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति का समुचित प्रयोग किया है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आरम्भ से ही ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति को अपनया, वे साहित्य को एक अविच्छिन्न धारा के रूप में देखना चाहते थे। उनकी 'कबीर' नामक रचना ऐतिहासिक आलोचना शैली के प्रौढ़ रूप का उदाहरण है। इसमें उन्होंने आलोचना की ऐतिहासिक समीक्षा को अपनाते हुए कबीरदास पर विचार किया है। हिन्दी के अन्य आलोचकों ने इसे साहित्य के युग तथा तत्कालीन परिस्थितियों का सहज प्रभाव कहा है। उनका कहना है कि भक्तिकाल की प्रौढ़ रचना के मूल में मुगल दरबार की प्रेरणाएँ काम कर रही थीं। 'हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर' में गियर्सन ने भी ऐसी धारणाएँ व्यक्त की। हिन्दी साहित्य के प्रवर्तकों ने भी इसी धारणा को अपना लिया। वे सूर और तुलसी को तत्कालीन अवस्थाओं की उपज मानने लगे। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी की परम्परा उपेक्षित होने लगी। हिन्दी साहित्य का उसकी पूर्ववर्ती परम्परा से सम्बद्ध स्थापित करने के लिए असंख्य आलोचक ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अपनाने लगे। द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य सम्बन्धी इन भ्रान्तियों को दूर किया। उन्होंने हिन्दी साहित्य परम्परा का सम्बन्ध भारत की मूल चिन्तन धारा से जोड़ा। द्विवेदी जी का विचार है कि कबीर की चिन्तनधारा केवल मुसलमानों के आगमन का परिणाम नहीं है बल्कि वह तो एक लम्बी परम्परा की विशेष अवस्था है। ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति का सहारा लेते हुए द्विवेदी जी संस्कृत के साहित्य, अपभ्रंश के लोक साहित्य नाथ सम्प्रदाय की विचारधारा तथा वैष्णव भक्तों की भक्ति पद्धति को भक्तिकालीन विभिन्न काव्य धाराओं के लिए उत्तरदायी मानते हैं। द्विवेदी जी ने यह भी सिद्ध किया है कि कबीर पर अपने परिवार की परम्परा तथा नाथ सम्प्रदाय का पूरा-पूरा प्रभाव है। इन जोगियों में निराकार की पूजा होती थी। वे ये तो जुलाहे थे या भीख माँगकर गुजारा करते थे। ये लोग ब्राह्मणों से घृणा करते थे। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति का सहारा लेते हुए कबीरदास और उनके साहित्य का मूल्यांकन किया। अपनी 'कबीर' नामक रचना में वे कहते हैं- "वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे, वे साधु होकर भी साधु (अग्रहस्थ) नहीं थे। वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। -वे कुछ भगवान् की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गये थे। वे भगवान् के नृसिंहावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भाँति वे नाना असम्भव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन-असम्भव व्यापार के लिए बिन्दु पर अवतीर्ण हुए थे। शायद ऐसी ही परस्पर विरोधी कोटियों का मिलन बिन्दु भगवान् को अभीष्ट होता है। कबीरदास ऐसे ही मिलन - बिन्दु पर खड़े थे। जहाँ पर एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व - - जहाँ एक ओर योग मार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्ति मार्ग जहाँ से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुण साधना।"

प्रश्न 26- द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर एक टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - द्वंद्वात्मक भौतिकवाद मार्क्स का प्रसिद्ध नियम है। यह समाज के विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह सिद्धान्त अपने स्वरूप में दार्शनिक है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद दो शब्दों से बना है द्वन्द्व + भौतिकवाद | द्वन्द्व एक चिन्तन प्रणाली है। भौतिकवाद एक दार्शनिक विचारधारा। यह सिद्धान्त इस मान्यता पर निर्भर है कि प्रत्येक वस्तु गतिशील एवं परिवर्तनशील है। इन वस्तुओं के मूल में अन्तर्विरोध समाहित है। इन विरोधों के कारण ही समाज एवं सभ्यता का विकास होता है। जैसाकि लेनिन ने कहा कि 'Development is the struggle off opposits.'

मार्क्स का यह मानना था कि इसी द्वंद्वात्मकता के सहारे जीवन जगत एवं समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। दो परस्पर विरोधी तथ्य आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया करके एक-दूसरे से प्रतियोगिता करने की होड़ में आगे निकल जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप मानव समाज का विकास सम्भव होता है। साथ ही साथ यह विकास अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में होकर क्रमशः गुणात्मक परिवर्तन की क्रान्ति उत्पन्न करता है इसी द्वंद्वात्मक प्रवाह में साहित्य, समाज व देशकाल की विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। अतः द्वंद्वात्मक एवं भौतिकता एक- दूसरे के पूरक हैं। समाज के धर्म, दर्शन, कला, अर्थ, राजनीति और साहित्य आदि के विभिन्न क्षेत्रों में कुछ न कुछ भिन्न दृष्टिकोण एवं पृथक मान्यताएँ होती हैं। यही दृष्टिकोण समाज की विशिष्ट संरचना का निर्माण करता है। मार्क्स का माना है कि मानव में जो परिवर्तन होते हैं वे ऐसे तत्वों के कारण होते हैं जो जैविक तत्व न होकर उनसे पृथक हैं और ये ही तत्व अन्य तत्वों को प्रभावित कर परिवर्तन करते हैं। साहित्य के इतिहास का अध्ययन वास्तव में इसी परिवर्तन का परिणाम है।

इस प्रकार मार्क्सवाद भौतिकवाद का एक विशिष्ट रूप है जो सृष्टि का मूल सत्य पदार्थ को मानता है, क्योंकि भौतिकवादी पदार्थों के कारण ही जीवन का विकास सम्भव हुआ है। उनके अनुसार चेतन जीवन का विकास पदार्थ ही संयोगात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं के द्वारा सम्भव हुआ है।

प्रश्न 27- ऐतिहासिक भौतिकवाद को समझाइए।

उत्तर - मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों का आधार बनाकर इतिहास का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि इतिहास की समस्त घटनाओं का कारण भौतिक एवं आर्थिक है। इस बात का उल्लेख एंजिल्स ने मार्क्स की समाधि में अपने भाषण में किया उसके अनुसार "मार्क्स का एक महान कार्य मानव इतिहास के विकास के नियम की खोज था। उसने अब तक विचारधाराओं के झाड़-झंखाड़ में छिपे हुए इस सरल तथ्य का पता लगाया था कि मनुष्य जाति को राजनीति, विज्ञान, धर्म आदि का विकास करने से पहले खाने पीने की, निवास की और

कपड़े की आवश्यकता है। अतएव एक निश्चित समय में, एक निश्चित जाति में जीवन निर्वाह के तात्कालिक भौतिक साधनों का उत्पादन एवं आर्थिक विकास की मात्रा एक ऐसी नींव होती है, जिस पर उस जाति की राज्य विषयक संस्थाएँ, कानूनी विचार, कला तथा धार्मिक विचार आधारित होते हैं, अतः इसी दृष्टि से उन सब वस्तुओं की व्याख्या की जानी चाहिए।”

माक्स की विचारधारा बिल्कुल जमीनी स्तर पर जीवन के बिल्कुल करीब की है। वह यह मानते हैं कि पेट मनुष्य की प्राथमिक एवं नैसर्गिक आवश्यकता है। पेट भरे रहने की स्थिति में ही मनुष्य के दिमाग में धर्म, दर्शन, राजनीति एवं विज्ञान जन्म लेते हैं तथा हृदय में भावनाएँ आलोकित होती हैं। क्षुधातुर व्यक्ति यह सब नहीं कर सकते हैं।

अतः मानव का प्रमुख कार्य भोजन सामग्री उत्पन्न करना या जुटाना भी है। अतः उत्पादन का महत्व बढ़ा। उत्पादन का कार्य अकेला मनुष्य करने में सक्षम नहीं था, अतः समाज की रचना हुई पर इसका परिणाम अधिक सुखद नहीं हुआ, समाज के कतिपय व्यक्तियों के उत्पादन के साधनों पर अधिकार कर लिया। परिणामतः असन्तोष और संघर्ष पनप उठा। इसके साथ ही प्रारम्भ हुई दोषपूर्ण वितरण पद्धति, जो गहरे असन्तोष का कारण बनी। यहीं से वर्ग संघर्ष की नींव पड़ी।

इस सन्दर्भ में सत्यदेव मिश्र जी लिखते हैं सामान्यतः मानव की सामाजिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक जीवन प्रक्रिया भौतिक जीवन के उत्पादन साधनों द्वारा निश्चित होती है अर्थात् मानव की चेतना उसकी सत्ता को निश्चित करती है, वरन इसके विपरीत उसकी सामाजिक चेतना (भौतिक परिस्थितियाँ) उसकी चेतना (राजनीतिक, धार्मिक कला सम्बन्धी संस्थाओं के स्वरूप) को निर्धारित करती है।

इतिहास पर आर्थिक कारणों के प्रभाव के आधार पर माक्स इतिहास को 5 युगों में बांटते हैं -

- 1- आदिम साम्यवादी युग
- 2- दास पद्धति युग
- 3- सामन्तवादी पद्धति
- 4- पूँजीवादी पद्धति
- 5- साम्यवाद

साम्यवादी चिन्तन इस बात का आग्रही है कि सभी प्रकार के परिवर्तनों के पीछे किसी सम्प्रदाय दर्शन राजनीतिक क्रान्ति अथवा किसी सुधारक एवं क्रान्ति दृष्टा की भूमिका नहीं होती है। मात्र आर्थिक कारण ही इन समस्त परिवर्तनों के लिए जिम्मेदार होते हैं। इतिहास का मार्ग भी आर्थिक अथवा भौतिक मूल्यों से ही बनता है। इस प्रकार सामाजिक उत्थान या सामाजिक परिवर्तन का कारण या आधार 'अर्थ' और आर्थिक उत्पादन ही हो सकता है। यह भी उल्लेखनीय है कि सामाजिक परिवर्तन में माक्सवाद के अनुसार और भी कारण सक्रिय हो सकते हैं। ऐंजिल्स कहता है, "इतिहास की भौतिकतावादी व्याख्या के अनुसार इतिहास में अन्तिम रूप से निर्णायक प्रभाव रखने वाला तत्व उत्पादन है। माक्स ने और मैंने इससे इतर कुछ नहीं कहा है, परन्तु

जब कोई इस कथन को विकृत करके यह कहने लगे कि आर्थिक तत्व ही एक मात्र तत्व है, तो ऐसा कहना पूर्णतः निरर्थक और बेढंगा होगा।"

प्रश्न 28- आधुनिक समीक्षा पद्धति पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - आधुनिक समीक्षा पद्धति : 'आज की समीक्षा' प्राचीन समीक्षा से कई अर्थों में भिन्न है। वह प्राचीन समीक्षा में परिष्कार चाहती है, क्योंकि आज के नवलेखन का वह सही मूल्यांकन नहीं कर पाती है। नयी रचनाओं की संवेदना और उसके सौन्दर्य की परख के लिए नई समीक्षा पद्धति की आवश्यकता है। आज की समीक्षा नवलेखन की उपज है। वह आज भी प्राचीन मानों को अस्वीकार कर नये मानों की खोज में है। नवलेखन से सम्बद्ध लेखकों में ही इस समीक्षा के सूत्र निहित हैं। मात्र सूत्र ही निहित हैं क्योंकि नवलेखन के क्षेत्र में कोई ऐसा समीक्षक नहीं है, जो नवीन मानों को सुनिश्चित कर सका हो, वैसे समीक्षा क्षेत्र में आचार्य द्विवेदी से लेकर वि. ना. साही तक इस क्षेत्र में अनेक समीक्षक कार्य करते रहे हैं। नवलेखन के क्षेत्र में अज्ञेय और मुक्तिबोध ने विभिन्न कृतियों पर समय-समय पर विचार करते समय या सम्पादन करते समय साहित्य के मूल प्रश्नों पर विचार व्यक्त किये हैं। आज के सर्जक की दृष्टि यथार्थवादी है। अतः उसका चिन्तन, जीवन-मूल्य और भाव पहले से भिन्न है, वह अपने भोगे हुए को वास्तविक मानता है, परिणामतः उसकी संवेदनाएँ पहले से भिन्न हैं, चूँकि जीवन जटिल है, व्यक्ति का व्यक्तित्व दुहरा है। अतः यह संवेदनाएँ भी प्रायः जटिल हैं, किसी एक भाव की सत्ता की खोज उसमें सम्भव नहीं है। "वह देखता है, अनुभव करता है कि प्राचीन जीवन मूल्य टूट रहे हैं, सारे आदर्श खोखले हो रहे हैं, चारों ओर बिखराव है, टूटन है, अकेलापन है, इनके बीच कुछ उगती हुई आस्थाएँ हैं, फिर वे टूट जाती हैं।" यह सत्य सर्जक को एक अजब चक्रव्यूह में डाल देता है। कवि छोटी-छोटी कविता में भी अनेक उलझी संवेदनाओं को व्यक्त करता चलता है, पूरे के पूरे सर्जन में ऐसा लगता है कि हमारे भीतर की अनेक परस्पर लिपटी तहें उभरती चली आ रही हैं, हम भीतर ही भीतर महसूस करने लगते हैं कि एक ही साथ कुछ संवेदनाएँ, कुछ प्रश्न, कुछ टूटती हुई सत्ता का बोध, कुछ बनती हुई जिन्दगी की आवाज है। बिम्बों और विशेषतया खंडित बिम्बों की योजना ऐसे सत्यों की अभिव्यक्ति में बड़ी सहायक होती है। अतः आज की समीक्षक समीक्षा का उद्देश्य जीवन की जटिलताओं को समझना चाहता है, नवीन मानव मूल्यों को वह परखना चाहता है, जीवन चेतना को समझने की यह दृष्टि देना चाहता है। क्या कोई कलाकार आत्मकेन्द्रित होकर समाज से निस्संग रहकर सर्जन कर सकता है। इस सम्बन्ध में मुक्तिबोध का विचार है कि "कवि, कहानी लेखक, उपन्यासकार का सौन्दर्य प्रतीत में वह सामाजिक दृष्टि सन्निहित है, जिसका उसने उन जीवन-प्रसंगों के मार्मिक आंकलन के समय उपयोग किया था। इस सामाजिक दृष्टि के बिना वह सौन्दर्य प्रतीत ही असम्भव हो सकती थी। भले ही वह दृष्टि या प्रभाव परम्परा, राजनीतिक वातावरण अथवा अपने प्राचीन या नवीन संस्कारों से प्राप्त की हो, किन्तु समाज और अपनी सामाजिक दृष्टि के बिना यह मूल्यांकन सम्भव नहीं है।

आज की समीक्षा का दूसरा सत्य है, सृष्टि और परिवेश का जीवित सम्बन्ध। यह परिवेश रचनाओं में नाना रूपों में व्यक्त होता है। प्राचीन कवि या लेखक कल्पना लोक में, वायवीय संसार में रहता हुआ सृजन करता था, किन्तु आज का सर्जक अपनी रचना में पूर्णतः समाहित रहता है। उसका टूटा हुआ, खण्डित व्यक्तित्व रचना में घुला मिला रहता है अतः रचनाकार के व्यक्तित्व को समझना किसी रचना को समझने का मूल आधार है। अतः आज की समीक्षा का एक भाग है सर्जक का व्यक्तित्व और उसका परिवेश। इस प्रकार आधुनिक समीक्षा पद्धति समाजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों की उपलब्धियों से आलोकित है। आधुनिक समीक्षक रचनाकार के सर्जन के मूलभूत तत्व और उनके रूपों का भी विवेचन करता है। सर्जन की मूल प्रक्रिया से भिन्न दृष्टियों से प्राप्त तत्वों या सत्यों को वह स्वीकार नहीं करती, भले ही वे तत्व अत्यन्त मूल्यवान हों। चाहे रस हो, चाहे प्रेषणीयता का प्रश्न हो, चाहे भाषा का सवाल हो, चाहे बड़े-बड़े सामाजिक मूल्यों की समस्या हो, चाहे आधुनिक बोध हो, चाहे परम्परागत प्रतीतियाँ हो, चाहे शालीनता अश्लीलता का सवाल हो, सभी को आज की समीक्षा सर्जन के मूल प्रश्नों के साथ सम्बन्ध करके देखने का प्रयत्न कर रही है।"

साहित्य का मूल धर्म क्या है? सौन्दर्य की सृष्टि अथवा जीवन की वास्तविक चेतना की अभिव्यक्ति। आज का समीक्षक सौन्दर्य की सृष्टि को महत्व देता हुआ भी जीवन की चेतना को अधिक महत्व देता है। डॉ. मिश्र ने ठीक लिखा है कि "निश्चय ही यह जीवन-चेतना का रूपांकन सर्जक के व्यक्तित्व के माध्यम से होने के नाते उसकी संवेदना में लगा होता है, साथ ही उसकी जीवन-दृष्टि और बौद्धिक चेतना से लिपटा भी होता है। उनका कहना है कि समकालीन जीवन चेतना अपनी अभिव्यक्ति में रसमयी ही नहीं होती, वह हमारी बौद्धिक चेतना को जगाती भी है और मन को केवल तुष्ट करने के स्थान पर प्रश्नानुकूल भी कहती है।

आज का समीक्षक कविता की प्रेषणीयता के प्रश्न पर भी गम्भीर चिन्तन करता है। यह प्रश्न पुरातन होते हुये भी चिर- नूतन है। हर युग की कविता के सन्दर्भ में यह प्रश्न उठता रहा है, आज भी उठ रहा है। नव लेखन के कवियों ने भी इस पर विचार किया है, किन्तु आज का विचारक मानता है कि सर्जक के समक्ष प्रश्न प्रेषणीयता का नहीं है, उसके समक्ष प्रधान प्रश्न अभिव्यक्ति का है। वह पूरी ईमानदारी से व्यक्त करना चाहता है। अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द है। वह सामूहिक सम्पत्ति है, अतः वह व्यक्त होने के बाद प्रेषित भी होता है। "लेकिन प्रेषित होने में उसकी कला कुशलता और पाठक की जागरूकता दोनों सहायक होते हैं।"

आज की समीक्षा की महत्वपूर्ण उपलब्धि है- शिल्प विधि का चिन्तन। यह भाषा और भाव को अलग-अलग नहीं देखती। प्राचीन साहित्य में भी शब्द और अर्थ की एकता पर विचार हुआ था। "किन्तु सर्जन की प्रक्रिया के स्तर पर भाषा पर विचार करने की प्रवृत्ति का विकास नवलेखन में विशेष रूप से हुआ है। भाषा और भाव की विशेषता अलग-अलग नहीं हो सकती। हर शब्द किसी न किसी अर्थ से, गूढ़ भाव से संपृक्त होता है। कलाकार शब्दों के स्वभाव को, यानी उनके भीतर निहित भाव को पहचानता है और नये संदर्भों में उनका प्रयोग कर नयी अर्थ -

छवियों से उन्हें जोड़ता है। भाषा का सर्जन से अपरिहार्य योग है, वह ऊपरी चीज नहीं है। भाषा की शक्ति की कमी को कवि लय से पूरा करता है।

आज के लेखन की भाषा की महत्वपूर्ण उपलब्धि बिम्ब-योजना। "आज की जटिल, खण्डित संवेदनाओं और बोधों को व्यक्त करने के लिए बिम्बों और विशेषतया खण्डित बिम्बों और मुक्तसाहचर्य की योजना हो रही है। बिम्बों की योजना आज सर्जन की अनिवार्य आवश्यकता है।" इसी प्रकार सर्जक प्रतीकों का भी सहारा लेकर अभिव्यक्ति करता रहा है, किन्तु "आज के युग में उसकी अनिवार्यता अधिक बढ़ गयी है। प्रतीक योजना से कविता दुरुह तो बनती है किन्तु वह काव्य के साध्य को व्यक्त करने के लिए कहीं-कहीं अपरिहार्य हो उठती है। अज्ञेय जी ने 'आत्मनेपद'

के प्रतीकों का महत्व निबन्ध में प्रतीक योजना को जीवित भारतीय काव्य की मुख्य विशेषता माना है। सर्वाधिक जीवंत जंनसाहित्य सदा से और सबसे अधिक प्रतीकों और अन्योक्तियों के सहारे ही अपना प्रभाव उत्पन्न करता है।

आधुनिक समीक्षा में शिल्प सम्बन्धी अनेक तथ्यों पर विचार हुआ। तुक, मात्रा, लय, छन्द, उपन्यास तथा कहानी आज की भाषा, आंचलिक उपन्यासों की शिल्प प्रक्रिया आदि पर भी आज की समीक्षा में विचार हुआ है और हो रहा है। अन्त में निष्कर्ष यही है कि "आज की समीक्षा भी मूलतः अनुभव को ही प्रधानता देती है। परिवेशगत अनुभव पर बल देकर आज की हिन्दी समीक्षा मूलतः साहित्य में जीवन को महत्व देती है।"

प्रश्न 29-ऐतिहासिक आलोचना के महत्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - ऐतिहासिक आलोचना बहुत ही समीचीन एवं जरूरी आलोचना पद्धति है। इसीलिए विभिन्न आलोचना शैलियों में ऐतिहासिक आलोचना का स्थान प्रमुख है। हिन्दी में साहित्य समीक्षा बहुत ही अर्वाचीन है। आधुनिक आलोचना के प्रवर्तन से ही हमें ऐतिहासिक आलोचना के दर्शन होने लगते हैं। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने कुछ लेखों में ऐतिहासिक आलोचना के संकेत दिये हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा मिश्र बन्धुओं ने भी कवियों की रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियों का अध्ययन किया है परन्तु ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर कवियों का मूल्यांकन करने का श्री गणेश सर्वप्रथम रामचंद्र शुक्ल ने किया। उन्होंने अपने आरम्भिक लेखों में ऐतिहासिक आलोचना पद्धति को अपनाया था। 'आनन्द कादम्बिनी' में उन्होंने भाषा शैली के आधार पर हिन्दी साहित्य के क्रमिक विकास पर नकाश डाला था। ऐतिहासिक विवेचन की इस प्रवृत्ति में उन्होंने न केवल सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक अवस्थाओं का वर्णन किया बल्कि सूर की कविताओं को उनकी परिस्थितियों का स्वाभाविक परिणाम बताया। परवर्ती काव्य में प्रायः सभी आलोचकों ने इस शैली का प्रयोग किया परन्तु शुक्ल जी की ऐतिहासिक दृष्टि साहित्य की अमिट और अविच्छिन्न धारा को नहीं देख सकी क्योंकि उन्होंने कवियों को साहित्य की धारा में रखकर नहीं देखा। शुक्ल जी के कुछ निष्कर्ष तो आज सर्वथा अनुपयोगी सिद्ध हो चुके हैं उदाहरण के रूप में शुक्ल जी का यह कहना कि

भक्ति निराश हिन्दू जाति की मानसिकता का परिणाम है। बहुत दिनों तक लोग शुक्ल जी के इस विचार का समर्थन करते रहें। धीरे-धीरे इस विचारधारा का निराकरण होने लगा।

कोई भी साहित्यिक रचना चाहे वह जिस युग में रची गई हो अपने युग की माँगों परिस्थितियों से प्रभावित होती जरूर है।

ऐतिहासिक आलोचना का महत्व इसीलिए बढ़ जाता है कि यह आलोचना पद्धति रचना की मूल संवेदना तक युगीन परिस्थितियों की पड़ताल करते हुए पहुँचती है। यह आलोचना पद्धति किसी भी रचना का मूल्यांकन सही ढंग से करती है।

प्रश्न 30- प्रारम्भिक हिन्दी आलोचना के स्वरूप एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - प्रारम्भिक हिन्दी आलोचना का स्वरूप आलोचना या समालोचना (Criticism) किसी वस्तु / विषय की, उसके लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, उसके गुण-दोषों एवं उपयुक्तता का विवेचन करने वाली साहित्यिक विधा है। इसमें पाठ अध्ययन, विश्लेषण, मूल्यांकन एवं अर्थ निगमन की प्रक्रिया शामिल है। हिन्दी आलोचना की शुरुआत 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु युग से ही मानी जाती है।

हिन्दी आलोचना-स्वरूप और विकास -

हिन्दी की विभिन्न विधाओं की तरह आलोचना का विकास भी प्रमुख रूप से आधुनिक काल की देन है। किसी भी साहित्य के आलोचना के विकास की दो प्रमुख शर्तें हैं पहली कि आलोचना रचनात्मक साहित्य से जुड़ती हो और दूसरी कि वह समकालीन साहित्य से जुड़ती हो। हिन्दी आलोचना अपने प्रस्थान बिन्दु से ही इन दोनों कसौटियों पर खरी उतरती है। आधुनिक काल से पहले आलोचना का स्वरूप प्रमुखतया संस्कृत काव्यशास्त्र की पुनरावृत्ति हुआ करती थी। लेकिन आज जो हिन्दी आलोचना का स्वरूप है, उसका आरम्भ आधुनिक हिन्दी साहित्य के साथ या यों कहा जाये कि साहित्य में आधुनिक दृष्टि के साथ ही साथ हुआ है। हिन्दी आलोचना संस्कृत के काव्यशास्त्रीय चिन्तन की पृष्ठभूमि को स्वीकार करते हुए नवीन सृजन, नवीन विचारधाराओं और नवीन सामाजिक सरोकारों से टकराते, हुए विविध दृष्टियों, प्रतिमानों और प्रवृत्तियों से युक्त होती चलती है।

हिन्दी आलोचना:स्वरूप और संकल्पना -

संस्कृत काव्यशास्त्र की पुनरावृत्ति होने के कारण रीतिकालीन काव्यशास्त्रीय विवेचन में न तो सूक्ष्म विश्लेषण और पर्यालोचन था, और न ही मौलिकता ही थी। इसमें काव्यशास्त्रीय रस तो विद्यमान था, लेकिन समाजिक संदर्भों में उभरते हुए जीवन काव्य का रस नहीं। कुल मिलाकर हिन्दी आलोचना का विकास साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी के विकास के समानान्तर हुआ है। आधुनिक गद्य साहित्य के साथ ही हिन्दी आलोचना का उदय भी भारतेन्दु युग में हुआ। जिस प्रकार देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं एवं विषमता बोध से लगाव के कारण इस काल का साहित्य विकसित हुआ, उसी प्रकार आलोचना का भी संबन्ध यथार्थ बोध से हुआ और यह प्रतीत होने लगा कि, रस किसी छन्द में नहीं है, बल्कि मानवीय संवेदना

के विस्तार में है। हिन्दी आलोचना के संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है, जिसकी ओर विश्वनाथ त्रिपाठी ने संकेत किया है, कि "हिन्दी आलोचना पाश्चात्य की नकल पर नहीं, बल्कि अपने साहित्य को समझने-बुझने और उसकी उपादेयता पर विचार करने की आवश्यकता के कारण जन्मी और विकसित हुई। यही कारण है, कि हिन्दी आलोचना, रचनाशीलता की समानधर्मी रही है। हिन्दी साहित्य की मुक्तिकामी चेतना के अनुकूल हिन्दी आलोचना भी संस्कृत काव्यशास्त्र की आधार-भूमि से जुड़कर भी स्वाभाविक रूप से रीतिवाद, साम्राज्यवाद, सामंतवाद, कलावाद और अभिजात्यवाद विरोधी और स्वछंदताकामी रही है। इसके साथ ही हिन्दी आलोचना संस्कृत के शास्त्र सम्मत स्वरूप से इतर रचना को केन्द्र में स्थापित करती है। रचना और आलोचना की समानधर्मिता को डॉ. रामविलास शर्मा के इस मंतव्य से समझा जा सकता है कि जो काम निराला ने काव्य में और प्रेमचन्द ने उपन्यासों के माध्यम से किया, वही काम आचार्य शुक्ल ने आलोचना के माध्यम से किया। हिन्दी आलोचना और रचना के गहरे संबंध का सुखद परिणाम यह होता है कि आलोचना या आलोचक अपने विवेचन या मूल्यांकन का परिष्कार रचना के बीच से करते हैं, न कि शास्त्रवाद के साये में। यही प्रवृत्ति हम नई कविता के दौर में भी देखते हैं, जहाँ रचनाओं के मूल्यांकन की प्रक्रिया में हिन्दी आलोचना में कुछ अवधारणात्मक शब्द जैसे आधुनिकता, प्रयोगशीलता, प्रगतिशीलता, प्रतिबद्धता, भोगा हुआ यथार्थ, लघुमानव, अनुभूति की प्रमाणिकता, अद्वितीय क्षण, व्यक्ति सत्य, मानव मूल्य, विसंगति, विडम्बना, तनाव, ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान, सचेतनता, व्यापकता और गहराई, ईमानदारी, समझदारी, बिम्ब और समाटबयानी विकसित होते गए हैं। जब नयी कविता और उसके बाद की कविता में अर्थ की परत सघनतर होती है, अभिव्यक्ति सूक्ष्मतर होती जाती है, तो आलोचना भी व्याख्या और निर्णय से आगे बढ़कर रचना के अर्थ-संवर्धन को अपना दायित्व मानती है। संक्षेप में और आचार्य शुक्ल के शब्दों को उधार लेकर कहा जा सकता है- हिन्दी आलोचना अपने स्वरूप और संकल्पना में 'साहित्येतर' और 'उपयोगिता' कसौटी को स्वीकार नहीं करती है।

प्रश्न 31- कला एवं कलाकार की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में मार्क्सवाद की क्या मान्यता है?

उत्तर - मार्क्सवादी कला एवं कलाकार की स्वतंत्रता का निषेध करते हैं। उनकी मान्यता है कि वैयक्तिक स्वतंत्रता भ्रमपूर्ण है। अतः कलाकार की स्वतंत्रता भी महत्वहीन है। न व्यक्ति कभी स्वतंत्र होता है न उनकी इच्छाएँ कभी स्वतंत्र होती, मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। वह जिस वातावरण में रहता है उसकी स्थिति भी कुछ उसी प्रकार हो जाती है। व्यक्ति चूँकि समाज से जुड़ा रहता है इसलिए उसके व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक परिस्थितियाँ जिम्मेदार होती हैं। मार्क्सवाद साहित्य में सामाजिक मूल्यों की अनिवार्यता का मूल्यांकन जनवादी धरातल पर करना चाहते हैं। क्योंकि कला का कार्य ही सम्पूर्ण जीवन एवं परिवेश का मूल्यांकन कर उसका व्याख्या करना है। वे जीवन से आँख बचाकर नहीं जाना चाहते हैं। बल्कि जीवन को

उसकी पूर्णता में रागात्मक निरीक्षण और अनुभूति का विषय बनाकर कलाकार के काम को सम्बन्धित कराना चाहते हैं।

मार्क्सवाद की उपरोक्त धारणा पर टिप्पणी करते हुए डॉ. देवराज सिंह लिखते हैं कि-

"जहाँ तक मार्क्सवाद कतिपय महत्वपूर्ण वास्तविकताओं की ओर हमारा ध्यान ले जाता है, वहाँ तक दृष्टि प्रसारक होने के कारण ग्राह्य है। इसके अतिरिक्त वाद के रूप में वह कलाकार की दृष्टि को सीमित या बद्ध करेगा ऐसी आशंका है। मार्क्सवाद का अनुयायी बनकर जो कलाकार प्रवृत्ति दाम्पत्य जीवन एवं माँ और शिशु के सम्बन्ध में सौन्दर्य को देखने से इन्कार करेगा, वह स्वयं अपनी दृष्टि में कला के उन्मेष में बाधक होगा। साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पीड़ित मानवता के क्रन्दन की ओर से नेत्र और कान मूंदकर हमें सभ्यता और कला का कोई उत्कर्ष नहीं कर सकते।"

प्रश्न 32- मार्क्सवादी साहित्य के मूल्यांकन का आधार स्पष्ट करते हुए साहित्य की सामाजिक उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - 'मार्क्सवादी साहित्य - मूल्यांकन का एकमात्र मानदण्ड सामाजिक उपयोगिता मानते हैं। चूँकि साहित्य सामाजिक कृति है, इसलिए उसका मूल्यांकन भी सामाजिक उपयोगितावादी दृष्टिकोण से होना चाहिए। इस प्रकार मार्क्सवाद सामाजिक यथार्थवाद के अभाव में किसी भी कलाकृति को उत्तम नहीं मानते हैं। साहित्य में न केवल वर्तमान जीवन के प्रति सच्चाई हो, वरन् उसमें भावी सम्भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण भी होना चाहिए, ताकि समाज में प्रगतिशील तत्वों को प्रतिस्थापना और भावी विकास के मार्ग के प्रशस्त किया जा सके।

मार्क्सवाद साहित्य को पार्टी सिद्धान्तों के प्रचार का माध्यम मानता है। उसके अनुसार साहित्य का सृजन पार्टी की नीतियों के अनुरूप होना चाहिए। लेनिन ने कहा- 'Literature must become party literature.'

साहित्य में मार्क्सवाद की प्रतिष्ठा कम होने का यही कारण भी है।

प्रश्न 33- साहित्य में मार्क्सवाद की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- साहित्य में मार्क्सवाद समाज की आर्थिक, सामाजिक और वर्गीय परिस्थितियों को समझने का महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है। मार्क्सवादी साहित्यिक आलोचना यह देखती है कि किसी रचना में वर्ग-संघर्ष, शोषण, आर्थिक असमानता और सामाजिक संबंधों का चित्रण किस प्रकार हुआ है। इसके अनुसार साहित्य समाज से अलग नहीं होता, बल्कि वह अपने समय की सामाजिक और आर्थिक संरचना से प्रभावित होता है। मार्क्सवादी आलोचक यह अध्ययन करता है कि साहित्य में शोषित और श्रमिक वर्ग का जीवन किस रूप में प्रस्तुत हुआ है। वह यह भी देखता है कि रचना में सत्ता और पूँजी के संबंधों को किस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद की अनेक रचनाओं को सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से समझा गया है। गोदान में किसान जीवन, गरीबी, शोषण और आर्थिक विषमता का प्रभाव दिखाई देता है।

इस प्रकार मार्क्सवादी दृष्टिकोण साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर सामाजिक परिवर्तन और जनजीवन की अभिव्यक्ति का माध्यम मानता है।

प्रश्न 34- मार्क्सवाद क्या है? इसके प्रमुख सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर- मार्क्सवाद एक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विचारधारा है, जिसका विकास मुख्य रूप से कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स के विचारों से हुआ। मार्क्सवाद के अनुसार समाज का विकास मुख्यतः आर्थिक परिस्थितियों और उत्पादन संबंधों से प्रभावित होता है। मार्क्स ने समाज में वर्ग-संघर्ष को परिवर्तन का प्रमुख आधार माना। उनके अनुसार समाज में शोषक और शोषित वर्गों के बीच संघर्ष चलता रहता है।

मार्क्सवाद का प्रमुख सिद्धांत ऐतिहासिक भौतिकवाद है। इसके अनुसार इतिहास का विकास भौतिक और आर्थिक परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ होता है। मार्क्स ने पूँजीवादी व्यवस्था की आलोचना करते हुए बताया कि पूँजीपति वर्ग श्रमिकों के श्रम से लाभ प्राप्त करता है। इसे उन्होंने अतिरिक्त मूल्य की अवधारणा से समझाया।

मार्क्सवाद समाज में आर्थिक समानता और शोषण-मुक्त व्यवस्था की स्थापना का समर्थन करता है। इसका अंतिम लक्ष्य वर्गहीन और शोषणविहीन समाज की स्थापना है। साहित्य के क्षेत्र में मार्क्सवादी आलोचना रचना को उसके सामाजिक, आर्थिक और वर्गीय संदर्भों में देखती है।

प्रश्न 35-"साहित्य सामाजिक चेतना का प्रतिफल है" इस कथन पर विचार करते हुए सर्वहारा के प्रति मार्क्सवाद की धारणा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - 'मार्क्सवाद यह कदापि नहीं मानता कि साहित्य स्वतः सत्य के प्रकाशन का माध्यम है। वे साहित्य को वैचारिकता के स्तर पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।

मार्क्सवादी यह भी नहीं मानते कि साहित्य अचेतन मन की प्रतिक्रिया होती है, वे तो यह मानते हैं कि कलाकार जागरूक रहकर ही साहित्य-सृजन करता है और उसकी यह जागरूकता सामाजिक चेतना पर ही आधारित होती है। वे यह भी मानते हैं कि सामाजिक चेतना ही साहित्य को प्रभावित करती है। ऐंजिल्स के अनुसार, "राजनीतिक, न्यायिक, दार्शनिक, धार्मिक, साहित्यिक, कलात्मक आदि विकास आर्थिक विकास पर आधारित होते हैं, पर वे एक-दूसरे पर भी और आर्थिक आधार पर भी अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं।" मार्क्सवादी यह भी मानते हैं कि सामाजिक चेतना जनित बौद्धिक चेतना पर आधारित साहित्य ही मूल्यवान हो सकता है, धर्म चिन्तन पर आधारित या वैयक्तिक संवेदनाओं पर आधारित साहित्य अल्पकालिक होता है। मार्क्सवाद सर्वहारा वर्ग का पक्षपाती है। उसका हृदय ही सर्वहारा वर्ग के हितार्थ हुआ है। मार्क्स ने समाज को दो वर्गों में बांटा है -

1- बुर्जुवा,

2- सर्वहारा।

बुर्जुवा वर्ग पूँजीपति है। यह शोषक वर्ग है। सर्वहारा वर्ग शोषित वर्ग है। दोनों वर्गों में निरन्तर संघर्ष की प्रक्रिया जारी रहती है। साहित्य का काम इसी संघर्ष को गतिशील बनाना है। ताकि साम्यवाद की स्थापना सम्भव हो सके। लेनिन कहते हैं कि साहित्य वर्ग संघर्ष को बढ़ाने का ही साधन है।

मार्क्सवाद यही चाहता है कि यह वर्ग संघर्ष सर्वहारा को इतनी शक्ति दे सके कि वह पूँजीपति व्यवस्था को उखाड़ फेंके। अतः मार्क्सवाद में सर्वहारा वर्ग का हित सर्वोपरि है। माओत्सुंग का मानना है कि साहित्य की रचना श्रमिकों, किसानों, सिपाहियों और देहाती बुर्जुआ को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। उसकी सार्थकता समाज के इसी वर्ग से जुड़ने में है इसी से मार्क्सवाद यह भी मानता है कि कला के उद्भव और विकास में श्रम की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि उसके ही द्वारा उन हाथों में शक्ति और क्षमता आती है। जो कला का निर्माण करती है, साथ ही उससे जीवन का अनुभव प्राप्त होता है जो साहित्य का सृजन करने में सहायक होता है। साहित्य का प्रयोजन भी सर्वहारा वर्ग के हितों की रक्षा करना ही है। अतः साहित्य का काव्य का सम्बन्ध अर्थव्यवस्था (उत्पादन आदि) से ही जोड़ा गया है।

प्रश्न 36- साहित्य से आप क्या समझते हैं?

उत्तर- साहित्य का निर्माण भाषा, विचार, कल्पना और भावों द्वारा होता है। विचार यदि कल्पनात्मक ढंग से प्रकट किये जाते हैं तो साहित्य का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। वस्तुतः निरुद्देश्य कल्पना को साहित्य नहीं कहा जा सकता। साहित्य कभी निरुद्देश्य नहीं होता। कल्पना का सम्बन्ध जनहित में अवश्य होना चाहिए। कुछ लोग केवल कल्पना में सौन्दर्य आवश्यक मानते हैं। उसकी उपयोगिता और अनुपयोगिता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। इसी तरह भावों के श्लील और अश्लील होने के सम्बन्ध में भी मतभेद हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि साहित्य उस रचना को कहते हैं जिसमें आनन्द के साथ किसी सत्य का उद्घाटन किया गया हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं प्रभावशालिनी हो।

प्रश्न 37- साहित्य और जीवन किस प्रकार एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- साहित्य और जीवन का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे एक-दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध हैं, जिस प्रकार शरीर और आत्मा सम्बद्ध हैं। साहित्य को जीवन से और जीवन को साहित्य से पृथक् नहीं किया जा सकता। साहित्य में जीवन की अभिव्यक्ति और उसकी वास्तविकता दोनों होती हैं। वह समय विशेष की समस्त परिस्थितियों को हमारे समक्ष उपस्थित कर देता है। किसी भी देश, जाति अथवा समाज की सभ्यता तथा संस्कृति का परिचय हमें उस देश के साहित्य से प्राप्त हो सकता है। साहित्यकार अपने समय का प्रतिनिधि होता है। वह अपनी रचनाओं में युग की समस्त जटिलताओं और समस्याओं को जीवन से ग्रहण कर हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देता है। उसके अभिव्यक्त करने के साधन अलग-अलग हो सकते हैं, किन्तु इतना

निश्चित है कि साहित्यकार जीवन से प्रेरणा लेकर कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबन्ध, कविता आदि के माध्यम से उन्हें उपस्थित करता है। वस्तुतः हम साहित्य का सृजन इसलिए करते हैं कि हमारे चारों ओर की परिस्थिति हमें प्रेरित करती है। इस प्रकार साहित्य और जीवन एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं।

प्रश्न 38-समकालीन समीक्षा मनोविश्लेषणवादी समीक्षा से किस प्रकार भिन्न है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - समकालीन समीक्षा का प्रारम्भ बीसवीं शताब्दी में हो गया था। इसका मूलाधार था कृति की सम्यक् समीक्षा न कि साहित्यकार की आलोचना कविता को एक वस्तु मानते उसके रूपात्मक विश्लेषण पर बल दिया गया। इस वाद पर भी बल दिया गया कि ऐतिहासिक, सामाजिक अथवा नैतिक अवधारणाओं कृति पर थोपने की बजाय समीक्षक को कविता की संरचना में विश्लेषण पर ही ध्यान देना चाहिए और यह देखने का प्रयास करना चाहिए कि उसके रचनात्मक अवयवों कितनी सुधड़ता के साथ परस्पर आवृत्त इस प्रकार समकालीन समीक्षा विशेष फल विषय पर न रहकर रूप रचना पर आ गया और किसी भी कृति के अर्थ, विधान एवं शब्द विधान को ही सर्वाधिक महत्व दिया गया। समकालीन समीक्षा में विषय गौड़ हो गया और कला प्रधान हो गयी।

मनोविश्लेषणवादी समीक्षा का अभिप्राय है मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में किसी कृति की समीक्षा करना। फ्रायड के अनुसार कला का जन्म वासना से होता है। हमारी कुठारें एवं अतिरिक्त वासनायें जो अवचेतन में पड़ी रहती हैं जाने-अनजाने कला या स्वप्न के माध्यम से व्यक्त हो जाती हैं। साहित्य कृतिकार के अभिव्यंजन एवं स्वभाव का मनोविश्लेषण करना चाहिए। यह आलोचना पद्धति साहित्य को सामाजिक कर्म न मानकर व्यक्तिक कर्म मानती और कृति के अन्तरिक व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कृति का विश्लेषण एवं भावना करती है। मनोवैज्ञानिक समीक्षा में मनोविश्लेषण के आधार पर रचना की केवल परीक्षा नहीं होती अपितु रचनाकार की मानसिक स्थितियों का विश्लेषण एवं उसके व्यक्तित्व का अध्ययन भी होता है। वस्तुतः इस प्रणाली में काव्य रचना की प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाता है यही समकालीन समीक्षा एवं मनोविश्लेषणवादी समीक्षा में भिन्नता है।

प्रश्न 39- मार्क्सवादी समीक्षा पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर - मार्क्सवादी समीक्षा मार्क्सवादी मान मूल्यों से अनुप्रेरित है। यह समीक्षा पद्धति किसी रचना के कलात्मक सौन्दर्य को उसकी समग्रता में देखती है। कवि की दृष्टि से रचना की समग्रता एवं सम्पूर्णता को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। वह साहित्य में उन्ही तत्वों पर मान्यता देती है जो जनवादी दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मार्क्सवादी समीक्षा के स्वरूप पर डॉ. भगवतस्वरूप मिश्र जी लिखते हैं कि -

"मार्क्सवादी जीवन शक्तियों के आधार पर कलाकृति की श्रेष्ठता स्वीकार करता है। इससे स्पष्ट है कि उसके मूल्यांकन का आधार बौद्धिक है, पर यह मान लेना कि मार्क्सवादी आलोचक

काव्य में भाव तत्व की आवश्यकता नहीं समझते, आलोचना के वास्तविक स्वरूप को न समझना माँग है। कला का प्रभाव बुद्धि पर ही नहीं अपितु हृदय पर भी पड़ता है। भाव, संवेदना और शैली की संजीवता के कारण एक कलाकृति अपेक्षाकृति कम गम्भीर एवं उलझे हुए बुद्धि तत्व के साथ भी संवेदन तत्व की अपेक्षा प्रौढ़ बुद्धित्व वाली कलाकृति से कहीं उत्कृष्ट मानी जायेगी।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि मार्क्सवादी सौन्दर्य दृष्टि स्पष्टतः जनाधारित है। वह "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" में सत्य और शिव को स्वीकार करती है तथा सुन्दर की उपेक्षा कर देती है। कलाकार अपने युग का पूर्ण प्रतिनिधि होता है। उसमें अनुभूति की गहराई एवं व्यापकता दोनों ही गुणों का समावेश होता है। उसकी वाणी में युग के सम्पूर्ण संघर्ष राग-विराग मूर्तिमान होकर बोलते हैं। मार्क्सवाद का विचार करते हुए 'मैक्सिम गोर्की' ने लिखा है कि समाजवादी यथार्थवाद का समर्थक लेखक मानव को किसी चित्रकार की भाँति निश्चल रूप में चित्रित नहीं करता। वह उसे सतत गतिशील, क्रियाशील तथा आपस में अन्तहीन संघर्ष, वर्ग संघर्ष, दलगत संघर्ष और व्यक्तिगत संघर्ष में जुटा हुआ चिन्हित करता है।

प्रश्न 40- साहित्य में मार्क्सवादी दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - मार्क्सवाद का सम्बन्ध जीवन और जगत के प्रति नये दृष्टिकोण से है। इस वाद द्वारा प्रेरित साहित्य भौतिक जगत को सत्य मानता है तथा मानव समुदाय के मंगल की कामना करता है। जीवन के प्रति लौकिक दृष्टिकोण इस साहित्य का आधार है। मार्क्सवादी साहित्य न तो इतिहास की उपेक्षा करता है और न ही वर्तमान का अनादर तथा न ही भविष्य के रंगीन सपने बुनता है। वह तो इतिहास को वैज्ञानिक दृष्टि से जाँचते परखते हुए वर्तमान को समझने की कोशिश करता है और इसी के आधार पर भविष्य के लिए अपना मार्ग चुनता है। यही कारण है कि मार्क्सवादी काव्य में इतिहास चेतना अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है। प्रगतिवादी काव्य सामाजिक यथार्थ पर केन्द्रित होता है। वह परिवेश के प्रति गहरा लगाव रखता है। मार्क्सवाद से प्रेरित साहित्यकार समाज को देखने के लिए वर्ग चेतन प्रधान दृष्टि रखता है। एक बात ओर ध्यान में रखना चाहिए कि मार्क्सवाद को जो सौन्दर्य बोध से संपृक्त रहता है।

जीवन के प्रति मार्क्सवादी साहित्य का नजरिया बड़ा ही सकारात्मक है। इस धारा का साहित्यकार जीवन की स्वीकृति का रचनाकार होता है। जीवन धर्मी लगाव उसके यहाँ रेखांकित करने की चीज होती है।

मार्क्सवाद मानवतावादी भी है। लेकिन आँख मूँदकर वह मानव प्रेम में विश्वास नहीं करता। शोषण दमन उत्पीड़न करने वाले के प्रति गहरी घृणा एवं गरीब शोषित मेहनतकश और पीड़ित मानवता के प्रति गहरा प्रेम उनके मानवतावाद का आधार है। वह अपने को गरीब एवं मेहनतकश के साथ जोड़ना चाहता है, लेकिन न जुड़ पाने की स्थिति में आत्मग्लानि से ग्रसित होता है

मुक्ति बोध लिखते हैं। इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए पूरी दुनिया साफ करने के लिए
बेहतर चाहिए वह बेहतर मैं हो नहीं पाता,
पर रोज कोई भीतर चिल्लाता है

बशर्ते कि आदमी खरा हो

फिर भी मैं उस ओर अपने को ढो नहीं पाता।

मार्क्सवादी कवि यथास्थितिवादी नहीं होता है। वह सामाजिक परिवर्तन के पक्ष में होता है।
सामाजिक परिवर्तन की उनकी कल्पना स्वच्छन्द स्वेच्छाचारी या अराजक नहीं है। वे वांछित
दिशा में ही परिवर्तन की कल्पना करते हैं या प्रयत्न करते हैं। मार्क्सवादी साहित्यकार जानता
है भविष्योन्मुखी दृष्टि के अभाव में परिवर्तन की कामना का कोई अर्थ नहीं है। मुक्तिबोध
लिखते हैं-

“अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने ही होंगे

तोड़ने होंगे मठ और गढ़ सब

पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार।

तब कहीं देखने मिलेगी हमको

नीली झील की लहरीली थाहें

जिसमें कि प्रति पल कांपता रहता

अरुण कमल एक ॥”